TIGHT BINDING BOOK

हिन्दी गद्य-माला

[चुने हुए श्रेष्ठ लेखोंका संग्रह]

सम्पादक—

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए०

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ४

छठी बार
एप्रिल, १९४९



एक रुपया बारह आने

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६, केलेवाड़ी गिरगाँव, बम्बई

अ नु क्र म णि का

पृष्ठ-संख्या

	हिन्दी गद्यका प्रारंभिक परिचय	...सम्पादक	५
१	मुझसे सब अच्छे	...घनश्यामदास बिड़ला	१
२	वैशाली	...पारसनाथसिंह बी. ए., एल. एल. बी.	७
३	तुम हमारे कौन हो ?	...पार्वतीनन्दन	१८
४	पञ्च-परमेश्वर	...प्रेमचन्द बी. ए.	२६
५	आन्दोलन	...मावलीप्रसाद श्रीवास्तव	४३
६	हिन्दू धर्म क्या है	...श्रीप्रकाश एम. ए.	५६
७	अबसे सौ बरस बाद	...रघुपति सहाय बी. ए.	६४
८	दादा और पोतेकी चिट्ठी-पत्री	...डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुर	७४
९	सदाचार और प्राकृतिक चुनाव	...गोवर्धनलाल एम. ए. बी. एल.	९३
१०	स्मृतिज्ञानकीर्ति	...राहुल सांकृत्यायन	१०५
११	कुत्ते	...व्रजमोहन वर्मा बी. ए.	१२०
१२	हिंसापर अहिंसाकी विजय	...जयशंकर प्रसाद	१२७
१३	स्वर्गका कोना	...श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए०	१३३

हिन्दी गद्यका प्रारंभिक परिचय

१

हिन्दी हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीय भाषा है। वह एक प्रान्तकी नहीं, समस्त देशकी भाषा है। यह बात उसके नामसे ही, 'हिन्दी' शब्दसे ही, सूचित हो जाती है। 'हिन्दी' का अर्थ है हिन्दकी भाषा। सच्ची बात यह है कि हिन्दी उस प्रदेशकी भाषा है जो प्राचीन कालसे लेकर आजतक भारतीय सभ्यताका प्रधान केन्द्रस्थान रहा है। हिन्दुओंके प्रायः सभी प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान इसी प्रदेशमें हैं। सभी प्रान्तोंके निवासी और सभी धर्मोंके अनुयायी यहाँ आते-जाते रहते हैं। यही कारण है कि हिन्दी भाषासे भारतके प्रायः सभी लोग अभिज्ञ रहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओंकी अपेक्षा इसका क्षेत्र मी विशेष विस्तृत है। गंडकीसे लेकर पंजाबतक, और कुमायूँसे लेकर विन्ध्याचलके दूसरे भागतक, यही भाषा प्रचलित है। इसीसे भारतीय भाषाओंमें समस्त देशकी,—हिन्दुस्तानकी, भाषा यही कही जा सकती है।

प्राचीन कालमें आर्योंकी भाषा थी वैदिक-भाषा। सर्वसाधारणमें बोलचालके लिए जो भाषा व्यवहृत होती थी उसीको हम लोग 'प्राकृत' कहते हैं। आजकल जो भाषा संस्कृत कही जाती है वह वैदिक कालकी प्राकृत भाषाका परिमार्जित रूप है। संस्कृत विद्वानोंकी भाषा थी। वह देव-वाणी हो गई। साहित्यमें उसका रूप स्थिर हो गया। उसीसे अन्य प्राकृत भाषायें उत्पन्न हुईं। इनमें मुख्य हैं महाराष्ट्री, शौरसेनी, पाली और मागधी। भगवान् बुद्ध और महावीर स्वामीने इन्हीं प्राकृत भाषाओंमें लोगोंको उपदेश दिये थे। इन्हीं प्राकृत भाषाओंसे अपभ्रंश भाषाओंका विकास हुआ। शौरसेनी और अर्ध-मागधीकी अपभ्रंश भाषाओंसे हिन्दी भाषाकी उत्पत्ति हुई।

२

भाषामें परिवर्तन अवश्यम्भावी है, क्योंकि उसका सम्बन्ध जीवित मनुष्य-समाजसे है। देश, काल, विदेशी जातियोंका सम्मिश्रण,—ये सब भाषाके परिवर्तनमें सहायक हैं। मुसलमानोंके आनेके बाद हिन्दीने एक दूसरा ही रूप

धारण किया। आजकल जो खड़ी बोलीके नामसे प्रसिद्ध है वह मेरठ और उसके आसपासके प्रदेशमें बोली जाती है। मुसलमानोंने उसीको ग्रहण किया और अरबी और फारसी भाषाके प्रभावसे शीघ्र ही उसने एक स्थिर रूप प्राप्त कर लिया। उसीका नाम 'उर्दू' है। मुसलमानोंके कारण वह प्रादेशिक भाषा न रहकर देशव्यापक भाषा हो गई। कुछ अपनी स्वाभाविक मधुरताके कारण और कुछ वैष्णव धर्मके प्रभावके कारण ब्रज-भाषा हिन्दीके काव्यकी सामान्य भाषा हो गई।

पद्यकी अपेक्षा गद्यका सम्बन्ध जन-समाजसे अधिक है। गद्य समाजकी स्वाभाविक भाषा है और पद्य कलाकी भाषा है। भाव-सौन्दर्यकी अभिव्यक्तिके लिए पद्यका ही आश्रय लेना पड़ता है पर शिक्षा-प्रचार और ज्ञान-वृद्धिके लिए गद्यकी आवश्यकता होती है। यों तो हिन्दीमें गद्यका विकास आधुनिक युगमें ही हुआ है परन्तु इसके पहले भी गद्य लिखा जाता रहा होगा, इसमें सन्देह नहीं है। अभीतक इस दिशामें खोज ही नहीं की गई है। पं० जयचन्द्रजी विद्यालंकारके अनुसार तेरहवीं सदीका पछाहीं हिन्दीका गद्य अभिलेखोंमें मौजूद है। भारतमें ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित होनेके बाद जनतामें शिक्षा-विस्तारका प्रयास हुआ और तब गद्यात्मक साहित्यकी वृद्धि हुई। लल्लूलाल और राजा शिवप्रसादके ग्रंथ शिक्षा-विभागके ग्रंथ थे। इनके पहलेके भी गद्यके दो-एक ग्रंथ हैं। उनका भी उद्देश्य सर्व-साधारणमें धार्मिक शिक्षा देना है। कला रसिकोंकी वस्तु है। उसका आदर विशेषज्ञ ही कर सकते हैं। परन्तु अल्पज्ञोंके लिए, जनताके लिए, गद्यात्मक साहित्यकी आवश्यकताको हिन्दीके आदि कालमें भी कुछ लोगोंने समय समयपर अनुभव किया था। कहा जाता है कि गुरु गोरखनाथने वि० सं० १४०० के लगभग हठयोगसम्बन्धी जो शिक्षायें दीं उन्हें उनके शिष्योंने गद्य-पुस्तकोंमें निबद्ध किया। नीचे उसका अवतरण दिया जाता है—

> "श्री गुरु परमानंद तिनको दंडवत है। हैं कैसे परमानंद, आनंद-स्वरूप है सरीर जिन्हिको, जिन्हिके नित्य गाएतें सरीर चेतन्नि अरु आनंदमय होतु है। मैं जु हों गोरिष सो मच्छन्दरनाथको दंडवत करत हों। हैं कैसे वे मच्छन्दरनाथ, आत्मजोति निश्चल है अंतहकरन जिनको अरु मूलद्वारतैं छह चक्र जिन्हि नीकी तरह जानैं।......स्वामी, तुम्हें

तो सतगुर, अम्हें तो सिष। सबद तो एक पूछिवा, दया करि कहिवा। मनि न करिया रोस।"

इन हठयोग विषयक पुस्तकोंके बाद सत्रहवीं शताब्दीके पूर्वार्धके वल्लभाचार्यके पौत्र गोकुलनाथके दो गद्य-ग्रन्थ भक्ति-मार्गके हैं। उनके नाम हैं 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता' 'दोसौ बावन वैष्णवनकी वार्ता'। नीचे उसका एक उदाहरण दिया जाता है—

"नंददासजी तुलसीदासके छोटे भाई हते सो बिनकूं नाच तमासा देखिवेको तथा गान सुनिवेको शोक बहुत हतो वा देशमेंसूं एक संग द्वारका जात हतो सो नंददास ऐसें विचारे कै मैं श्री रणछोड़जीके दर्सनकूं जाऊं तो अच्छा है जब बिनने तुलसीदाससूं पूंछी सो वे तुलसीदासजी रामचन्द्रजीके अनन्य भक्त हते, जासूं बिनने द्वारका जायवेकी नाहीं कही...सो मथुरा सूधे गये मथुरामें वा संगकूं बहुत बहुत दिन लगे सो नन्ददास संगकूं छोड़ कर चल दीने।"

खड़ी बोलीमें गद्यकी पहली पुस्तक अकबरके समकालीन कवि 'गंग' लिखित 'चन्द छन्द बरननकी महिमा' है। उसकी भाषाका नमूना यह है—

"इतना सुनके पातसाहिजी श्रीअकबरसाहजी आद सेर सोना नरहरदास चारनकों दिया। इनके डेढ़ सेर सोना हो गया। रास बाँचना पूरन भया। आम खास बरखास हुआ।"

इसके बाद सन् १६९० के लगभग जटमलने 'गोरा बादलकी कथा' खड़ी बोलीमें लिखी है। उसकी भाषाका रूप निम्नलिखित अवतरणोंसे स्पष्ट हो जायगा—

"ये कथा सोलःसे आसीके सालमें फागुन सुदी पूनमके रोज बनाई। ये कथामें दो रस है। वीर रस व सिनगार रस है। सो कथा मोरछड़ नाव गांवका रहनेवाला कवेसर। उस गांवके लोग भोहोत सुखी है। घर घरमें आनन्द होत है। कोई घरमें फकीर दीषता नहीं।"

इसके बादकी प्रयागनिवासी लाला श्यामलाल श्रीवास्तवकी एक पुस्तक 'खुलासा तहकीकात कायस्थान' सन् १७७२ की छपी हुई मिली है, उसकी खड़ी बोलीका नमूना देखिए—

'पोथियोंसे साबित है कि पेशतर इसत्रियाँ पढ़ती-लिखती थीं और सीने

परोहनेका हुनर सीखती थीं जैसी कि श्रीसीताजी व द्रौपदीजी व दूसरी रानियां महारानियां व ग्रिहिस्त पढ़े लिखे थीं तो अब हम क्यों इस्त्रियोंको जो हमारी अर्धांगी हैं और आधे पापपुन्यकी साथी हैं उनको हुनर और इलमसे विमुखी रक्खैं इससे हम अपने लड़कीयोंकी तालीम नागरी लिखने व पढ़नेकी देवैं कि जब उनके खाविंद दूर रहैं तो वै अपना दिलका हाल लिख भेजैं और पढ़ लेवैं और जिस वक्त उनके खाविंद दूर खर्च न भेज सकैं तो अपनी दस्तकारीसे तकलीफ न उठावैं बुध्यमान इसै अंगरेजी मतासे न समझेंगे।"

अभी तककी खोजसे हिन्दीका सबसे पहला दैनिक पत्र 'समाचार-सुधा-वर्षण' जून सन् १९५३ में कलकत्तेमें प्रकाशित हुआ था। उसके गद्यकी भाषा इस प्रकार थी—

"यिह सत्य हम लोग अपने आंखोंसे प्रत्यक्ष महाजनोंकी कोठियोंमें देखते हैं कि एककी लिखी हुई चिठी दूसरा जलदी बांच सकता नहीं। चार पांच आदमी लोग एकट्ठा बैठके ममा टटा कका धधा डडा करिके फेर मिट्टीका घड़ा बोलके निश्चय करते हैं। क्या दुःखकी बात है कहिये तो अपने पाससे द्रव्य खरच करके विद्यादान देनेकी बात तो दूर रही अपने विद्या सीखना बड़ा जरूरत है।"

हिन्दी गद्यकी विशेष पुष्टि संवत् १८६० के लगभग मुंशी सदासुखलाल, [इंश]ा अल्लाखाँ, सदल मिश्र और लल्लूलाल द्वारा हुई है। मुंशी सदासुख दिल्लीके रहनेवाले थे। उनका 'सुखसागर' श्रीमद्भागवतका अनुवाद है। इन्शा अल्लाखाँने 'रानी केतकीकी कहानी' लिखी है। लल्लूलालने 'प्रेम-सागर' की रचना की और सदल मिश्रने 'नासिकेतोपाख्यान' की। इनकी रचनाओंकी भाषा निम्नलिखित अवतरणोंसे स्पष्ट हो जायगी—

"जो बात सत्य होय उसे कहा चाहिए, को बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका (जो) सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूपमें लय हूजिए। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराईकी बातें कहके लोगोंको बहकाइए और फुसलाइए और सत्य छिपाइए......और सुरापान कीजिए, और धन द्रव्य इकठौर कीजिए और मनको जो कि तमोवृत्तिसे भर रहा है उसे निर्मल न कीजिए। तोता है तो नारायणका नाम लेता है, परन्तु ज्ञान तो नहीं है।"

—मुंशी सदासुखलाल

" जब दोनों महाराजोंमें लड़ाई होने लगी, रानी केतकी सावन भादोंके रूप रोने लगी, और दोनोंके जीमें यह आ गई,—यह कैसी चाहत जिसमें लोहू बरसने लगा और अच्छी बातोंको जी तरसने लगा। कुंवरने चुपकेसे यह कहला भेजा, अब मेरा कलेजा टुकड़े टुकड़े हुआ जाता है। दोनों महाराजोंको आपसमें लड़ने दो। किसी डौलसे जो हो सके तो तुम मुझे अपने पास बुला लो। हम-तुम मिलके किसी और देश निकल चलें। होनी हो सो हो।"

—इन्शा अल्ला खाँ

" सुनते ही विधाताने कहा कि पहले तुमको महातपस्वी, कुल उद्धार करने योग्य पुत्र होगा। पीछे राजा इक्ष्वाकुके कुलकी महा सुन्दर कन्या जो पतिव्रता सबगुणभरी सो तुम्हारी भार्या होगी। चितमें कुछ चिन्ता मत करो। हमारा कहा कभी झूठा न होगा। अपने आश्रमपर जा शिवपूजन करो।"

—सदल मिश्र

" श्रीशुकदेवजी बोले, राजा, जिस समै श्रीकृष्णचंद्र जन्म लेने लगे, तिस काल सबहीके जीमें ऐसा आनन्द उपजा कि दुख नामको भी न रहा, हरषमे लगे बन उपवन हरे हो हो फूलने फलने, नदी नाले सरोवर भरने, तिनपर भांति भांतिमें पंछी कलोलें करने और नगर नगर गांव गांव घर घर मंगलाचार होने, ब्राह्मण यज्ञ रचने, दसों दिशाके दिगपाल हरषने, बादल व्रजमंडल पर फिरने, देवता अपने अपने विमानोंमें बैठे आकाशसे फूल बरसावने, विद्याधर गंधर्व चामर ढोल दमामें भेरी बजाय बजाय गुन गाने।"

—लल्लूलाल

इन लेखकोंके बाद राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द और राजा लक्ष्मणसिंहके द्वारा हिन्दी गद्यका रूप विशेष परिष्कृत हो गया। निम्नलिखित अवतरण उन्हींकी रचनाओंके हैं—

" राजाके जीपर एक अजब दहशत-सी छा गई, नीची निगाह करके वह गरदन खुजाने लगा 'सत्य बोल, भोज तू डरता है, तुझे अपने मनका हाल जाननेमें भी भय लगता है?' भोजने कहा—'नहीं, इस बातसे तो नहीं डरता क्योंकि जिसने अपने तई नहीं जाना उसने फिर क्या जाना? सिवाय

इसके मैं तो आप चाहता हूँ कि कोई मेरे मनकी थाह लेवे और अच्छी तरहसे जाँचे। मारे व्रत और उपवासोंके मैंने अपना फूल-सा शरीर कांटा बनाया। ब्राह्मणोंको दानदक्षिणा देते देते सारा खजानां खाली कर डाला, कोई तीर्थ बाकी न रक्खा, कोई नदी या तालाब नहानेसे न छोड़ा, ऐसा कोई आदमी नहीं है जिसकी निगाहमें मैं पवित्र पुण्यात्मा न ठहरूं' कि सत्य बोला, 'ठीक, पर भोज यह तो बतला कि तू ईश्वरकी निगाहमें क्या है ?... जो तू उस बातको जाननेसे, जिसे अवश्य जानना चाहिए, डरता नहीं, तो आ मेरे साथ आ, मैं तेरी आँखें खोलूँगा।"

—राजा शिवप्रसाद

"(एक बालक सिंहके बचेको घसीटते हुए आया और उसके साथ दो तपस्विनी आईं)

बालक—अरे सिंह, तू अपना मुह खोल मैं तेरे दांत गिनूंगा।

पहिली तपस्विनी—ए हठीले बालक, तू इस वनके पशुओंको क्यों सताता है। हम तो इन्हें बाल बच्चोंके समान रखती हैं। हाय तेरा खेलमें भी साहस नहीं जाता; इसीसे तेरा नाम ऋषिने सर्व-दमन रक्खा है।

दुष्यन्त—(आप ही आप) आहा ! क्या कारण है कि मेरा स्नेह इस लड़केमें पुत्रका-सा होता आता है, जैसा पुत्रमें होता है। हो न हो यह हेतु है कि मैं पुत्रहीन हूँ।

दूसरी तपस्विनी—जो तू बचेको छोड़ न देगा तो यह सिंहिनी तुझपर दौड़ेगी।

बालक—(मुस्क्या कर)—ठीक है, सिंहिनीका मुझे ऐसा ही डर है।

दुष्यन्त—

दीखत बालक मोहि यह, तेजस्वी बलबीर।
काठ काज जैसे अगिनि, ठाढ़ो है मति धीर॥

पहिली तपस्विनी—हे बालक ! सिंहिनीके बचेको छोड़ दे। मैं तुझे उससे भी सुन्दर खिलौना दूँगी।

बालक—पहले खिलौना दे दो (हाथ पसार कर) लाओ कहाँ है ? ला दे दो।

—राजा लक्ष्मणसिंह

"मैं पंचक्रोशीका वर्णन ऐसा नहीं करना चाहता कि जिसे देखकर लोग पंचक्रोशीकी यात्रा करने चले जायं वरंच मैं भगवान कालके उस परम प्रबल फेरफाररूपी शक्तिको दिखाता हूँ जिससे धैर्य्यमानोंका धैर्य्य और अज्ञानोंका मोह बढ़ता है। आहा! उसकी क्या महिमा है और कैसी अचिन्त्य शक्ति है! अतएव मैं मुक्तकण्ठसे कह सकता हूँ कि ईश्वर भी कालका एक नामान्तर है, क्योंकि इस संसारकी उत्पत्ति प्रलय केवल इसीपर अटकी है। जिस विजयी और विख्यात सिकन्दरने संसारको जीता उस्की अस्थि कहाँ गड़ी है और जिस कालिदासकी कविता संसार पढ़ता है वह किस कालमें और किस स्थानपर हुआ? यह किस्का प्रभाव है कि अब उस्का खोज भी नहीं मिलता? अतएव यदि हम प्राचीनोंसे प्राचीन, नवीनोंसे नवीन, बलवानोंसे बलवान, उत्पत्ति, पालन, नाशकर्ता और सर्वतन्त्र-स्वतन्त्रादि विशेषणोंसे विशिष्ट ईश्वरको कालहीका एक नामान्तर कहैं, तो क्या दोष है।"

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने तो हिन्दी गद्यको स्थायी रूप दे दिया। आधुनिक लेखक लगभग उन्हींके प्रदर्शित मार्गपर चल रहे हैं।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी हिन्दी साहित्यमें नवयुगके प्रवर्तक हैं। उनके समयसे लेकर आजतक हिन्दी साहित्यका विस्तार बढ़ता ही गया है। गत पचीस वर्षोंमें हिन्दी साहित्यकी विशेष उन्नति हुई है। साहित्यके भिन्न भिन्न क्षेत्रोंमें कितने ही ऐसे लेखक हो गये जिनकी रचनायें हिन्दीकी स्थायी सम्पत्ति मानी जा सकती हैं;—जातीयता, विचार-स्वातंत्र्य, देश-भक्ति, प्राचीन आदर्शोंसे असन्तोष, ज्ञानके लिए तीव्र आकांक्षा, विश्व-बन्धुत्व आदि भाव-साहित्यमें स्थान पा रहे हैं।

३

प्रत्येक देशका इतिहास कई युगोंमें बाँटा जा सकता है। प्रत्येक युगमें एक विशेष सभ्यता, कुछ विशेष विचारों और भावनाओं तथा उन्हींके अनुकूल संस्थाओंका प्राधान्य रहता है। उसके द्वारा देश दिन दूनी और

रात चौगुनी उन्नति करता दिखाई देता है। किन्तु, कालान्तरमें वही विचार, वही भावनायें, वही संस्थायें, ऐसी विकृत हो जाती हैं कि उनका प्रारम्भिक बल जाता रहता है। तब प्रकृतिके विकास-नियमके अनुसार एक नवीन सभ्यताका उद्भव होता है, लोग उन्नतिके नये नये प्रयोग करते हैं। देशमें प्रमाद, आलस्य और मिथ्याचारके स्थानमें एक जाग्रतिकी लहर-सी छा जाती है। इसी लहरको इतिहासज्ञ एक नवीन युगका प्रादुर्भाव कहते हैं। उन्नीसवीं शताब्दीमें भारतवर्षमें एक इसी प्रकारके युगका जन्म हुआ था। बंगालके प्रसिद्ध विद्वान् यदुनाथ सरकारका कथन है कि अठारहवीं शताब्दीके मध्यकालमें ही मुगल-सभ्यता उस पहलवानके सदृश हो गई थी शक्तिका ह्रास हो जानेके कारण बात बातमें जिसका दम फूलने लगता है। यही क्षीणता समाजके अंग-अंगमें प्रवेश कर गई। किन्तु, तत्कालीन भारतवर्षके जीवनके दूसरे लक्षण सबसे पहले सैनिक और राजनीतिक दौर्बल्यके रूपमें प्रकट हुए थे। देशमें स्वयं अपनी रक्षा करनेकी शक्ति न रह गई थी। बादशाहके सिरपर ताज तो था, किन्तु उसको सँभालनेके लिए न उसके बाहुओंमें बल था और न मस्तिष्कमें योग्यता। दरबारियोंकी भी बड़ी दुर्दशा थी। सबको अपनी अपनी पड़ी थी। स्वार्थके मारे वे सामूहिक भलाईका अर्थ ही नहीं समझ सकते थे। सौ बातकी बात यह कि साम्राज्यमें सर्वत्र मिथ्याचार, अनाचार, छल और कपटका दौरदौरा था। इस व्यापक और भयङ्कर गड़बड़ीके कारण लोग सत्साहित्य, शिल्प और कला, यहाँतक कि धर्मके आधारभूत सिद्धान्त,—सभी कुछ खो बैठे थे। ठीक इसी अवसरपर योरपने इसके साथ मुठभेड़ शुरू की। उसके वेगको रोकना भारतके लिए असम्भव था। हार निश्चित थी। पचास वर्षोंके भीतर ही सारे भारतपर इंग्लैंडका आतङ्क छा गया।

इसके पश्चात् जो समय आया उसको हम आधुनिक भारतवर्षका अन्ध-युग कह सकते हैं। यह समय मोटे तौरसे सन् १७९० से १८३० तक अर्थात् कार्नवालिसके शासन-कालसे बेंटिङ्कके शासन-कालतक रहा। इसको अन्ध-युग इसलिए कहा है कि इस समय प्राचीन सभ्यता और संस्कृति तो एकदम ठंडी पड़ गई थी और नवीनका जन्म ही नहीं हुआ था। लोग हैरान थे। यह कोई नहीं कह सकता था कि भावी भारतवर्षका जीवन किस साँचेमें ढाला जानेवाला है। किन्तु, शायद इसीको हम आधुनिक भारतवर्षका बचपन-

काल भी कह सकते हैं, क्योंकि इसी समयमें भारतकी उन्नतिका बीजारोपण भी हुआ।

इसके समाप्त होते ही भारतवर्षका आधुनिक युग आरम्भ होता है। भारतवासियोंने अपनी दिशा निश्चित कर ली। इंग्लैंडमें इन दिनों धड़ाधड़ सुधार हो रहे थे, भारतवासियोंने उन्हींका अनुकरण किया। राष्ट्रीय जीवन किसे कहते हैं, देशके शासनमें नागरिकके अधिकार कैसे होने चाहिए; इन बातोंकी शिक्षा भारतवासियोंको पश्चिमसे ही मिली। उन्नतिशील भारतवासी इन्हीं विचारोंके आधारपर देशके जीवनका संस्कार करने लगे। परन्तु, इन भारतवासियोंकी कायापलट भी हो गई थी। वे एक दूसरे ही रंगमें रँगे हुए थे। इनका उपास्य देव पूर्व नहीं, पश्चिम था। इनमेंसे अधिकांश अँग्रेजी भाषा और साहित्यके पण्डित हो चुके थे। यही भारतके प्रारम्भिक नेता थे। राजा राममोहनराय नवयुगके सबसे बड़े गुरु थे। अन्धयुगके भारतको अन्धकारसे निकालकर पश्चिमके ज्ञानसूर्यके दर्शन करानेका श्रेय इन्हींको प्राप्त हुआ।

इस आन्दोलनका सबसे पहला सुफल हुआ विचार-स्वातंत्र्य। भारतवासियोंको विश्वास हो गया कि अब लकीरके फकीर बननेसे काम नहीं चलेगा। बुद्धि और विवेकके आधारपर ही हम सबको अपने भावी जीवनका निर्माण करना होगा। इस आन्दोलनका जन्म और प्रचार सबसे पहले बङ्गाल प्रान्तमें हुआ। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि सबसे पहले बङ्गालपर ही अँग्रेजोंने प्रभुत्व स्थापित किया और दूसरा यह कि मुगल युगमें मुस्लिम सभ्यतासे उसका बहुत कम सम्पर्क हुआ था। इसलिए उसको अपने प्राचीन विचार छोड़ने और नवीनको अपनानेमें अधिक कष्ट न सहना पड़ा। उन्नीसवीं शताब्दीके पहले भागमें बङ्गाली अँग्रेजी शिक्षा और पद्धतिपर बेतरह मुग्ध हो गये। पर शीघ्र ही राष्ट्रीय भावनाओंकी जाग्रति हुई और उसीके साथ राष्ट्रीय साहित्यकी भी उन्नति हुई।

पाश्चात्य सभ्यताका प्रभाव हिन्दीपर भी पड़ा। पर इसे चाहे हिन्दी साहित्यका दुर्भाग्य समझिए या सौभाग्य, हिन्दी साहित्यका शृंगार अल्पशिक्षित जनोंने ही किया।

उच्चशिक्षाप्राप्त हिन्दी-भाषा-भाषी विद्वान् हिन्दी भाषा और साहित्यसे विमुख ही रहे। यही कारण है कि हिन्दीमें अनुवाद-ग्रन्थोंकी इतनी विपुलता है। अनुवाद ग्रन्थोंसे सबसे बड़ा लाभ यह है कि अल्प प्रयाससे उच्च श्रेणीका

साहित्य निर्मित हो जाता है, भाषा अधिक परिष्कृत हो जाती है और उसमें अधिक ग्राहिका शक्ति भी आ जाती है। आधुनिक युगके आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीके 'महाभारत' 'शिक्षा' और 'स्वाधीनता' नामक ग्रन्थ अनुवाद-मात्र हैं, पर उनसे हिन्दी भाषा-भाषियोंका जो उपकार हुआ उसे कौन अस्वीकार करेगा?

४

आधुनिक साहित्यका आदर्श भी परिवर्तित हो गया है। प्राचीन साहित्यमें जैसे चरित्रोंकी सृष्टि होती थी वैसे चरित्रोंकी सृष्टि अब कहीं भी नहीं होती। प्राचीन साहित्यमें महत् चरित्रोंकी ही अवतारणा होती थी। ये चरित्र मनुष्योंमें भक्ति, विस्मय और आतङ्क उत्पन्न करते थे। वज्रसे भी कठोर और कुसुमसे भी कोमल होनेके कारण ये लोकोत्तर चरित्र साधारण मनुष्योंके लिए बोधगम्य नहीं थे। उनके सुख और दुःख, आपत्ति और विपत्ति, धैर्य और संयम, शक्ति और क्षमा, सभी असाधारण थे। अपनी विराट् योग्यताके कारण ये जन-समाजसे बिलकुल पृथक् थे। आधुनिक युग जन समाजमें किसीको भी छोड़ना नहीं चाहता। वह मनुष्योंकी असमानता दूर कर उनमें भ्रातृत्व स्थापित करना चाहता है। इसीसे आधुनिक साहित्यके चरित्रोंसे भक्तिका उद्वेग नहीं होता। उनसे सहानुभूतिका भाव प्रकट होता है।

यही भेद प्राचीन साहित्यके रचयिताओं और आधुनिक साहित्यके लेखकोंमें भी है। प्राचीन युगके रचयिता भाव-सागरसे रत्न निकालकर रखते थे। ऐसे रत्न निकालनेकी क्षमता सभीमें नहीं होती और फिर उन रत्नोंमें बड़े बड़े राजप्रासादोंकी ही श्रीवृद्धि हो सकती है। उन रत्नोंकी ज्योति भी अलौकिक होती है,—कालका उनपर प्रभाव नहीं पड़ता। आधुनिक युगके लेखकोंमें ऐसी क्षमता किसीमें भले ही हो, अधिकांश लोग तो पत्थरों और ईंटोंका ही सञ्चय करते हैं। ऐसे भी हैं जो केवल मिट्टीका ढेर छोड़ जाते हैं। ऐसे लोगोंकी रचनायें बहु-काल-व्यापी नहीं होतीं। अधिकांश तो प्रतिदिन बनती हैं और नष्ट होती हैं। परन्तु सर्व-साधारणका काम उन्हींसे चलता है। मतलब यह कि आधुनिक युग-साहित्यमें विशेष शक्तिशाली और प्रतिभावान् लेखकोंका प्राधान्य नहीं है। आजकल थोड़ी शक्तिवाले लेखकोंसे ही काम चलता है। तुलसीदास और बिहारीलाल भाव सागरमें अपना प्रतिभा-जाल फेंककर भाव-रत्नोंका संग्रह कर सकते थे, परन्तु किसी दैनिक या मासिक

पत्रके लिए समाचारों या लेखकोंका संग्रह शायद उनसे न होता !

आधुनिक युग महत्ताके लिए प्रयत्न नहीं करता, वह विस्तारके लिए कोशिश कर रहा है। आधुनिक साहित्य हिमालयकी तरह भव-भूतलको भेदकर आकाशकी ओर अग्रसर नहीं हो रहा है। वह घासकी तरह सारी पृथ्वीपर फैल कर उसे स्निग्ध बनाना चाहता है। यह जीवनका उच्चतम आदर्श नहीं बतलाता है, यह लोगोंमें प्रेम और सहानुभूतिका भाव उत्पन्न कर उनके दैनिक जीवनको सुखमय बनाना चाहता है। आधुनिक साहित्य बहुसंख्यक सर्वसाधारणके लिए है। इसीसे आजकल अधिकांश लेखक ग्रंथकार नहीं, मासिकपत्रोंके पृष्ठ-पोषक हैं और मासिकपत्र चिरन्तन नहीं, केवल एक महीनेके लिए हैं।

सेवाके भावसे प्रेरित होकर जो लोग काम करते हैं उन्हें न तो यशका लोभ होता है और न निन्दाका भय। जिसे वे देशके लिए श्रेयस्कर समझते हैं उसे करने कहने या लिखनेमें उन्हें संकोच नहीं होता। यदि कोई उनकी बात न सुने तो भी वे क्षुब्ध न होंगे, यदि कोई उनका अपमान करे तो उसे भी वे चुपचाप सह लेंगे। अपमानके भयसे वे कर्तव्य-च्युत नहीं होंगे, यश और प्रतिष्ठाकी लालसासे वे अपना काम छोड़कर दूसरा नहीं करने लगेंगे। हिन्दी साहित्यकी जो कुछ उन्नति हुई है वह साहित्यके ऐसे ही सेवकोंके द्वारा हुई है। हिन्दी साहित्यके उन्नायकोंमें न तो देशके वाग्मी नेता थे और न कोई विश्वविख्यात् विद्वान् ही थे। उनमें अधिकांशकी साधारण स्थिति थी, विशेष विद्वत्ता या प्रतिभा उनमें नहीं थी। तो भी उन्हींके द्वारा साहित्यकी गौरव-वृद्धि हुई है। जो देशके नेता या समाजके कर्णधार कहे जाते हैं, या जिनके पांडित्यकी प्रशंसा योरप और अमेरिकाके विद्वत्समाजमें हो रही है, उनसे हिन्दी साहित्यको अभीतक कोई अलभ्य रत्न प्राप्त नहीं हुआ है।

५

परन्तु हिन्दीका भविष्य अत्यन्त उज्जल है। उसकी दीनावस्था अब दूर हो रही है। हिन्दी साहित्यकी सेवामें उच्चशिक्षाप्राप्त व्यक्ति भी सम्मिलित हो रहे हैं। हिन्दीमें उच्च कोटिकी मौलिक रचनायें भी प्रकट हो रही हैं। उसमें भी दो-चार लेखक हैं जो प्रतिभावान् कहे जा सकते हैं। यही बात दिखलानेके लिए यह ‘ गद्यमाला ’ प्रकाशित की जा रही है। इन निबन्धोंसे पाठकोंको यह स्पष्ट हो जायगा कि हिन्दी साहित्यका क्षेत्र कितना व्यापक हो गया है।

विज्ञप्ति

इस संग्रहमें विद्यार्थियोंके लिए भिन्न भिन्न विषयोंपर, भिन्न भिन्न शैलियोंमें, भिन्न भिन्न लेखकोंके उत्तमसे उत्तम लेख संग्रह किये गये हैं। इन्हें चुनते समय लेखकोंकी ख्याति और प्रतिष्ठाकी अपेक्षा लेखोंकी उत्तमताकी ओर अधिक ध्यान दिया गया है। मुझे विश्वास है कि इस संग्रहसे विद्यार्थियोंका विशेष उपकार होगा।

जिन जिन महानुभावोंकी बहुमूल्य रचनाओंको इसमें संग्रह किया गया है, उन सभी लेखकोंके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ और साथ ही इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ कि उनकी रचनाओंमें कहीं कहीं थोड़ा-बहुत परिवर्तन संशोधन करनेकी अनधिकार चेष्टा की गई है जो कि इस कारण आवश्यक हो पड़ी कि यह पाठ्य पुस्तक है और एक विशेष योग्यताके लिए प्रस्तुत की गई है।

—सम्पादक

मुझसे सब अच्छे

मुझे सबेरे टहलनेकी आदत है। प्रातःकालकी शुद्ध हवा मनुष्योंको नया जीवन देती है। जब जब मैं घरपर रहता हूँ, सबेरेका भ्रमण एक प्रकारका नियम-सा हो गया है। एक रोज़ सबेरे टहलने निकला तो वायुकी परमार्थ वृत्तिपर विचार करने लगा।

पश्चिमी हवा चल रही थी। मैंने सोचा, यह वायु कितने परिश्रमके बाद यहाँ पहुँची होगी! कहाँसे चली, कितना उपकार किया, इसका अन्दाज़ कौन लगावे? भारतका पश्चिमी सागर यहाँसे करीब छः सौ मीलकी दूरीपर होगा, उसके आगे आफ्रिका तक केवल निर्जन समुद्र ही समुद्र है। सम्भवतः उससे भी पश्चिम और पश्चिमतरके प्रदेशोंमें पहाड़ियों, नदियों, समुद्रों, मनुष्यों, जीव-जन्तुओंको जीवन देती हुई पवन यहाँ पहुँची होगी; और अब यहाँके लोगोंको सुख देती हुई अपने कर्तव्य-पालनके लिए शान्त भावसे पूर्व-प्रदेशोंकी ओर अग्रसर होगी।

मैंने सोचा, यह हवा इतनी सेवा करती है फिर भी अखबारोंमें इसकी चर्चा क्यों नहीं आती? हवासे मैंने कहा—हवा, तुम संसारका

इतना उपकार करती हो; किन्तु तुम्हारी सेवाकी ख़बर मैं अखबारोंमें कभी नहीं पढ़ता। तुमको चाहिए कि जो थोड़ी-सी बात करो उसको बढ़ा-चढ़ाके अखबारोंमें छपा दिया करो।

हवाने कहा—कौन-सा अखबार अच्छा है?

मैंने कहा—हिन्दी-अँग्रेज़ीके बहुत-से अखबार हैं, सभीमें अपनी प्रशंसा छपवाया करो।

हवाने पूछा—क्या सूर्य-लोक एवं चन्द्र-लोकमें भी तुम्हारे यहाँके अखबार जाते हैं?

मैंने कहा—वहाँ तो नहीं जाते।

हवाने मेरी मूर्खतापर हँस दिया और कहा—तुम पक्के कूप-मण्डूक हो, तुम्हारे लिए थोड़े से लोग ही ब्रह्माण्ड हैं। मैंने तो प्राणिमात्रकी सेवाका व्रत ले रखा है, और मेरा अखबार है ईश्वरका हृदय। वहाँ सब खबरें आप-से-आप पहुँचती हैं। भली-बुरी सभी बातें वहाँ छपी रहती हैं, किसी बातका वहाँ पक्षपात नहीं। किसीके कहनेसे वहाँ कोई खबर नहीं छापी जाती, सच्ची खबरें वहाँ स्वयं छप जाती हैं। मैं तुम्हारी तरह मूर्ख नहीं कि विज्ञापनबाज़ीके दलदलमें फँस जाऊँ। निःस्वार्थ भावसे चुपचाप प्राणिमात्रकी सेवा करना; यही मेरा धर्म है और मेरे स्वामीको भी यही प्रिय है। अच्छा हो कि तुम भी मेरा अनुकरण करो।

हवाकी यह स्पष्टोक्ति मुझे बड़ी बुरी लगी। मैं, और हवा जैसी जड़ वस्तुका, अनुकरण करूँ! मनमें आया कि एक व्याख्यान ही झाड़ दूँ, अखबारोंमें तो उसका अतिरञ्जित वर्णन छप ही जायगा। परन्तु पवनको तो 'लगन लगी पद-पावनकी,'—उसे मेरा व्याख्यान

सुननेकी फुरसत कहाँ ? वह तो 'कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनं' गाती हुई शीघ्रतासे चल निकली।

तब मैंने अपना सारा क्रोध एक ऊँटपर ढाल दिया। बात यह हुई कि रास्तेमें एक ऊँट महाशय, अपनी थकान उतारनेके लिए, हाथ पाँव पीट-पीट कर धूल उछाल रहे थे। मैंने गर्दसे तंग आकर क्रोधमें ऊँटसे कहा—तुम बड़े गँवार हो, पशु तो हो ही, किन्तु तुम्हें तमीज़ भी बिलकुल नहीं है। हम लोग जिन रास्तोंसे होकर निकलते हैं उनमें ग़रीब मनुष्य भी किनारे खड़े होकर झुककर हमें प्रणाम करते हैं। हम जब जब टहलने जाते हैं तब तब हमारे लट्ठ-धारी नौकर रास्तेमें चलनेवालोंका नाकों दम कर देते हैं। तुमने, हमें झुककर प्रणाम करना तो दूर रहा, उलटा धूल उछालना शुरू कर दिया। इससे मालूम होता है कि तुम गँवार भी हो और धृष्ट भी।

इसपर ऊँटने अपना व्यायाम तो बन्द कर दिया, पर मेरी बातको सुनकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। वह बोला—तुम मूर्ख तो हो ही, साथ ही अभिमानी भी हो। अभी अभी तुम पवनको उपदेश देनेकी धृष्टता कर रहे थे! पवन तो आदर्श सेवक है, उसने तुम्हें कुछ नहीं कहा। पर कहीं मुझे उपदेश देनेकी धृष्टता न कर बैठना! बस यह समझ लो कि तुम बहुत गये-बीते हो।

मैंने कहा—ऊँट, तू पशु होकर मनुष्यको उपदेश देने चला है। मुझे तेरी बुद्धिपर तरस आता है।

ऊँटकी मुखाकृति गम्भीर हो उठी। आँखोंमें तेज चमकने लगा। अपने नथुनोंको फटकारकर उसने कहा—क्या केवल मनुष्य-देह मिलनेसे ही मनुष्य अपनेको मनुष्य कहनेका अधिकारी हो जाता

है ? क्या नादिरशाह, महमूद ग़ज़नवी और ऐसे ऐसे अनेक पापी अपनेको मनुष्य कहनेके अधिकारी हो सकते हैं ? और उन्हें मनुष्य-देह मिल गई, इसी बिरतेपर क्या वे अपनेको हम पशुओंसे ऊँचा समझ सकते हैं ? यदि तुम ऐसा मानते हो, तो तुम्हारी बुद्धिको सौ बार धिक्कार है !

मैं कुछ ठंडा पड़ गया। मैंने कहा—भाई ऊँट, उन पापी मनुष्योंकी बात न करो। वे तो नर-राक्षस थे। परन्तु मैं तो ऐसा नहीं हूँ। मैं तो अपने लिए कह सकता हूँ कि अपनी समझमें मैं तुमसे कहीं अच्छा हूँ।

ऊँट फिर हँस पड़ा। कहने लगा—अच्छा, जरा बता तो दो कि तुममें मुझसे कौन-सी बात अच्छी है ?

मैं सोचने लगा, क्या बताऊँ ? आखिर धनके अलावा मुझमें कौन-सी बात है जिसका मैं गर्व कर सकूँ ? अत्यन्त साहस करके मैंने दबी जबानसे कहा—अच्छा तो देखो, तुम जानते हो, मैं त्यागसे कितना प्रेम करता हूँ। सादगीसे रहता हूँ, खादी पहनता हूँ। यह क्या कुछ कम है ?

ऊँटने गर्वके साथ कहा—इसमें गर्व करनेकी क्या बात है ? मुझे देखो, मैं तो कुछ भी नहीं पहनता।

मैंने कहा—और सुनो, मैं भोजन भी सादा करता हूँ, मिर्च मसाले नहीं खाता।

ऊँटने कहा—अच्छा त्याग किया ! मुझे तो देखो, केवल सूखी पत्तियाँ चबाकर ही रह जाता हूँ।

मैंने कहा—मैंने गृहस्थाश्रमका भी त्याग कर दिया है।

ऊँटने कहा—क्यों इतना अभिमान करते हो ? मैंने तो गृहस्था-श्रममें प्रवेश ही नहीं किया। सो, मैं तो बाल-ब्रह्मचारी हूँ।

मैंने कहा—मुझमें ईर्षा-द्वेष अधिक नहीं। झूठ बहुत कम बोलता हूँ,—सो भी अनजानमें। रोष भी कम आता है।

ऊँटने कहा—इसमें कौन-सी बड़ाईकी बात है ? मुझमें न ईर्षा है न द्वेष, और न क्रोध। झूठ तो जीवनमें कभी बोला ही नहीं।

मैंने कहा—मुझमें सेवा-वृत्ति है।

ऊँटने कहा—उसका नमूना तो हम रोज़ ही देखते हैं। कल एक पीला बछड़ा रो रहा था, क्योंकि, उसकी माका दूध नित्यप्रति तुम पी लेते हो, बछड़ा तृण खाकर जीवन-निर्वाह करता है। उस दिन, सुनते हैं, तुमने एक घोड़ेको भी दौड़ाकर मार डाला। शहरके तमाम घोड़ोंमें इसी बातकी चर्चा थी। उनकी एक विराट् सभा हुई थी। उसमें मृतकके प्रति सहानुभूति और तुम्हारे प्रति घृणासूचक प्रस्ताव भी पास किये गये थे। न मालूम, कितने ऊँटों, घोड़ों, और बैलोंको तुमने इस प्रकार कष्ट दिया है, कितने पशुओंको लँगड़ा किया है, कितनोंको अपनी मोटरके धक्कोंसे गिराया है। अच्छा सेवाका दम भरते हो। मुझे देखो, न कपड़े पहनता हूँ, न जिह्वा-स्वादसे नाममात्र भी सम्बन्ध रखता हूँ। केवल सूखे तृण खाता हूँ। फिर भी बेंत, कोड़े और ठोकरें खाता हुआ नम्रता-पूर्वक तुम लोगोंकी सेवा करता हूँ। इसीको सेवा-व्रत कहते हैं। तुम लोगोंसे सेवा कैसे सम्भव है ? पहननेके लिए तुम्हें कीमती वस्त्र चाहिए, खानेके लिए सुस्वादु भोजन, सेवाके लिए नौकर, रहनेके लिए महल, टहलनेके लिए अच्छे वाहन या मोटर। मुसाफिरी करते हो तो मनों सामान एवं सामग्रियाँ साथमें चलती हैं। और तुम्हारे लिए बोझा ढोना पड़ता है हमको। अकाल पड़ता है तो लोग भूखों मरते

हैं, पीनेको पानी नहीं मिलता; परन्तु तुम्हारे बगीचोंकी फुलवारीको सरसब्ज रखनेमें गाँव-भरके बैलोंकी शान्ति नष्ट हो जाती है। तुम्हारा मनुष्य-समाज इस विषयमें बड़ा पतित है। शर्मकी बात है कि इसपर भी तुम अपनेको हमसे श्रेष्ठ समझते हो!

ऊँटकी बात मेरे हृदयमें चुभ गई। मुझे ग्लानि होने लगी। अन्तरात्मा कहने लगा—मूर्ख, तू ऊँटसे भी गया-बीता है।

पासमें खड़े हुए करीरके वृक्षने सिर हिलाकर कहा—ऊँट सच कहता है।

तब मैंने कहा—प्रभो, मुझे ऊँट जितना आत्म-बल तो दे दो।

सहसा आकाशमें बिजली चमकी। मेघ गरजा। सुननेवालोंने सुना, कहनेवालोंने कहा—

मो-सम कौन कुटिल, खल, कामी?
जेहि तन दियो ताहि बिसरायौ, ऐसो निमक-हरामी।

किसीने कहा—कहनेवाला और सुननेवाला दोनों एक हैं।

किसीने कहा—यह अन्तर्नाद है।

मैंने चिल्लाकर कहा—मुझसे सब अच्छे।

प्रश्नावली

१ निम्नलिखित शब्दोंके अर्थ लिखो और उन्हें वाक्योंमें प्रयुक्त करो—परमार्थवृत्ति, सम्भवतः, अग्रसर, कूपमण्डूक, स्पष्टोक्ति, धृष्ट, अतिरञ्जित, आदर्श, अन्तर्नाद।

२ मनुष्य अन्य प्राणियोंसे भी क्या शिक्षायें प्राप्त कर सकता है? दो चार साधारण पशुओंके उदाहरण देकर बतलाओ।

३ मानव-जीवनकी सार्थकता किसमें है?

वैशाली

ऐतिहासिक दृष्टिसे, मालूम नहीं, संसारमें सबसे प्राचीन नगर कौन है, पर मुजफ्फरपुर जिलेके बसाढ़ गाँवकी ओरसे यदि ऐसा दावा किया जाय तो विशेषज्ञोंको इसपर विचार अवश्य करना पड़ेगा और उनका फैसला चाहे जो हो, उन्हें इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि बसाढ़ संसारके प्राचीनसे प्राचीन ऐतिहासिक स्थानोंमेंसे है। अभी उस दिन हम, कुछ मित्रोंके साथ, बसाढ़ और उसके आसपासके स्थानोंके दर्शन और अपने पूर्वजोंके गुण-गौरवके संस्मरणसे अपनेको कृतार्थ करने गये थे; और नीचेकी पंक्तियाँ एक इतिहासप्रेमीकी इसी तीर्थ-यात्राका फल है।

'बसाढ़' वास्तवमें अपभ्रंश है। प्राचीन समयमें इस स्थानका नाम 'विशाला' या 'वैशाली' था। वाल्मीकिने रामचन्द्रकी जनक-पुर-यात्राका वर्णन करते हुए उनका वहाँ एक रात ठहरनेका उल्लेख किया है और साथ ही यह बताया है कि इसका नाम 'विशाला' क्यों पड़ा। बुद्धके समयमें इस स्थानका नाम 'विशाला' से 'वैशाली' हो गया था और भारतवर्षके प्राचीन इतिहासमें यह इसी नामसे प्रसिद्ध है। राम और बुद्धके बीच कितनी ही शताब्दियोंका अन्तर है, पर विशाला या वैशालीका इतने दिनोंका कोई इतिहास नहीं मिलता। इसके इतिहासका आरंभ ईसाके प्रायः छः-सौ बरस पहलेसे होता है।

वैशाली उस समय संभवतः प्रान्त-भरकी राजधानी थी। प्राचीन बौद्ध साहित्यमें उसका दूसरा नाम 'मगधपुर' कहा है, और जान पड़ता है कि बिम्बिसारसे पहले सारा मगध-प्रान्त वैशालीके अधीन था। यहाँके अधिपति वज्जि क्षत्रिय थे और इनके आठ वर्ग या उप-

जातियाँ थीं। इनमें लिच्छिवि श्रेष्ठ थे और, इतिहासमें, वैशालीके साथ इन्हींका घनिष्ठ सम्बन्ध भी है। ईसाके पूर्व ४९० सालमें बिम्बिसारके पुत्र अजातशत्रुने लिच्छिवियोंको पराजित कर वैशालीपर,—या यों कहना चाहिए कि तिरहुतपर अधिकार जमा लिया और तबसे यह प्रदेश मगध-साम्राज्यका भाग बन गया।

लिच्छवियोंकी पराजयको अजातशत्रुकी भेद-नीतिकी सफलता समझनी चाहिए। वास्तवमें यह राजा बड़ा चतुर और कूटनीतिज्ञ था; अपने पिता बिम्बिसारको मारकर गद्दीपर बैठा था; और महाभारतके अजातशत्रुसे गुण या धर्ममें बिलकुल विभिन्न था। एक दिन इसने अपने मंत्रीसे लिच्छवियोंकी एकता नष्ट करनेके सम्बन्धमें परामर्श किया और दोनोंने मिलकर स्थिर किया कि इसके लिए भेद-नीति काममें लाई जाय। दरबारमें मन्त्रीने सबके सामने वैशालीपर आक्रमणका विरोध किया। राजाने कहा, "यह ब्राह्मण पागल हो गया है क्या? यह इस काममें क्यों बाधा डालता है?" इसके बाद एक दिन मंत्रीने बृजियोंको कुछ प्रेमोपहार भेजा। इसपर राजा और भी बिगड़ा और उसने आज्ञा दी कि मंत्रीका सिर गंजा कर दिया जाय। मंत्रीने भी कहला दिया कि वह ऐसे राजाकी नौकरी करना नहीं चाहता और सीधे वैशाली चला गया।

अब वहाँका किस्सा सुनिए। लिच्छवियोंमें कुछ उसके स्वागतके विरोधी थे, पर औरोंने कहा कि "वाह, हमारे लिए इसकी ऐसी बेइज्जती हुई और हमी इसका अनादर करें!" मन्त्री-महोदयकी बड़ी आव-भगत हुई और धीरे धीरे वह लिच्छवियोंके सलाहकार भी बन बैठे। अब उन्हें अपनी भेद-नीति काममें लाने और अजातशत्रुकी इच्छा पूरी

करनेका अच्छा मौका मिला। एक दिन उन्होंने एक लिच्छवि-कुमारको अलग ले जाकर पूछा, "क्यों जी, लोग खेत जोतते हैं?" दूसरे कुमारको स्वभावतः यह जाननेकी इच्छा हुई कि दूसरेसे मंत्रीने एकान्तमें क्या कहा, पर उसे अपने मित्रके उत्तरसे कुछ भी सन्तोष न हुआ। दोनों आपसमें लड़ पड़े। दूसरे दिन मन्त्रीने किसी और लिच्छवि-कुमारसे उसी प्रकार पूछा, "आज आपने दाल कौन-सी खाई?" उसका कोई मित्र पास ही खड़ा था और उसने जानना चाहा कि इन दोनोंमें क्या बातें हुईं? पर उसे राजकुमारकी बातका विश्वास न हुआ और उन दोनोंमें भी मनमुटाव हो गया।

कूट-नीतिकी इस सफलताने उसका उत्साह और भी बढ़ा दिया और वह इसी उपायका अवलम्बन कर वैशालीके विनाशके बीज बोने लगा। एक दिन उसने एक लिच्छविसे पूछा कि, "क्या तुम कायर हो?" और दूसरेसे पूछा कि, "क्या तुम भिखमंगे हो?" और दोनोंसे प्रश्न पूछनेका कारण यह बताया कि, "तुम्हारे कुछ साथी ऐसा कहते फिरते थे, सो मैं जानना चाहता था कि बात क्या है?" उसकी इन हरकतोंने वैशालीमें बड़ा अनर्थ कर दिया और भाई भाई आपसमें लड़ने-झगड़ने लग गये।

जब मंत्रीने देखा कि ज़हर खूब फैल गया है और वैशालीमें प्रेम तथा एकताका स्थान द्वेष तथा विभिन्नताने ग्रहण कर लिया है, तब उसने राजाको खबर दी: वायु-मण्डल अनुकूल है, आप फौरन चढ़ाई कर दें।

अजातशत्रु तो ऐसे समाचारकी प्रतीक्षामें था ही। उसने बहुत बड़ी सेनाके साथ पहुँचकर सारे नगरको घेर लिया। वास्तवमें इतनी बड़ी

सेना ले जाना अनावश्यक था, क्योंकि, आपसके भेद-भाव और वैर-विरोधके कारण वैशालीवाले, अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए एक होकर लड़नेको तैयार न थे। बार बार शंख-नाद होने या नगाड़ा बजनेपर भी लोग उदासीनसे बने रहे। वे यही कहते रहे कि "जो लक्ष्मीके कृपापात्र हैं और वीर होनेका दम भरते हैं वे मगधावालोंसे लड़ने जायँ। हम लोग तो भिखमंगे और कायर ठहरे, हम क्या लड़ सकते हैं!" नतीजा यह हुआ कि वैशालीको अपनी स्वतंत्रतासे हाथ धोना पड़ा और सारा प्रदेश अजातशत्रुके हाथमें आ गया।

यह प्राय: २५०० बरस पहलेकी बात है। मालूम नहीं वैसा प्रसंग उपस्थित होनेपर आज बसाढ़-वाले क्या करेंगे। पर ज़मींदार रैयत दोनोंको ही इससे कुछ शिक्षा अवश्य ग्रहण करनी चाहिए।

लिच्छवि कौन थे और कहाँसे आकर वैशालीमें बसे थे, इस विषयपर विद्वानोंके विभिन्न मत हैं। स्मिथका कहना है कि लिच्छवि तिब्बतसे आये थे। बीलने भी ऐसा ही अनुमान किया है। तिब्बतका प्रथम शासक या अधिपति लिच्छवि-वंशका बताया जाता है, और तिब्बतके एक प्रान्तका नाम 'लिपल' अर्थात् 'लिका प्रदेश' है। इसी आधारपर यह तर्क किया गया है कि लिच्छवि तिब्बतसे आकर वैशालीमें बसे थे। स्मिथने और भी दलीलें पेश की हैं। पर इनमें किसीमें कुछ सार नहीं दीखता। असलियत यह है कि मगध-प्रान्त या तिरहुतसे बहुतसे बौद्धधर्म्म-प्रचारक तिब्बत भेजे गये थे और वे लोग बुद्धके उपदेशोंके अलावा इस देशकी सभ्यता और संस्कृति भी अपने साथ लेते गये थे। अगर लिच्छवियोंके कुछ रस्म-रिवाज़ या कायदे कानून वैसे ही हैं जैसे तिब्बतियोंके, तो इसका कारण यह है कि वैशाली या पाटलिपुत्रसे जानेवाले बौद्ध-भिक्षुओंने धर्म-प्रचारके साथ तिब्बतमें

अपनी सभ्यताका भी प्रचार किया। और यह भी कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है कि कोई लिच्छवि धर्म-प्रचारक अपनी गुणगरिमासे तिब्बतका अधिपति बन बैठा हो। डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषणका तर्क है कि लिच्छवि ईरानके निसिबिस बन्दरगाहसे आये थे। इसका भी कोई प्रमाण नहीं है। और अगर इतिहासने डाक्टर साहबका रास्ता पकड़ा तो 'बसाढ़' को संभवतः 'बसरा' हड़प लेगा और 'अशोक' पर 'अलास्का' का आधिपत्य हो जायगा!

हिन्दू, बौद्ध और जैन तीनोंकी ही दृष्टिसे वैशाली परम पवित्र स्थान है। मर्य्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीके यहाँ एक रात ठहरनेका ऊपर उल्लेख हो चुका है। महात्मा बुद्ध यहाँ तीन बार आये। महावीर बर्द्धमान तो यहाँके निवासी ही थे और इसी लिए वे 'वैशालीय' कहे भी जाते हैं।

महावीरका जन्म ईसाके प्रायः छःसौ वर्ष पहले वैशालीके निकटस्थ कोल्लाग गाँवमें हुआ था। आपके पिताका नाम सिद्धार्थ था। आप वैशालीके तत्कालीन प्रधानाधिपति चेतकके दौहित्र थे। वैशालीमें किसी समय जैनियोंकी खासी संख्या थी और बौद्धोंसे खूब वाद-विवाद हुआ करते थे।

इस समय वहाँ आर्य-धर्मावलम्बियोंमें केवल हिन्दू रह गये हैं। बुद्धकी मूर्तियोंकी पूजा अब उसी श्रद्धा-भक्तिसे की जाती है, पर पूजा करनेवाले हिन्दू ही होते हैं। वैशालीके पुराने क़िलेका ध्वंसावशेष इस समय 'राजा विशालका गढ़' नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ एक बालाजीका मन्दिर है जिसका निर्माण, जान पड़ता है, बसाढ़ और बौद्ध धर्म्मके वियोगके बाद हुआ था। पर दूसरे मन्दिरमें देखा कि गणेश और बुद्धकी मूर्तियोंकी एक साथ पूजा होती है।

इसलामने भी थोड़ेसे स्थानपर कब्जा कर लिया है, और गढ़के पास ही मीर साहबका मकबरा है जिसके कारण वहाँ आजतक खुदाई न हो सकी, और यह न मालूम हो सका कि प्राचीन समयमें वहाँ क्या था।

बुद्ध पहली बार वैशाली-निवासियोंके विशेष अनुरोध और आग्रहसे यहाँ आये थे। उस समय वैशालीमें कोई महामारी फैली हुई थी जो उनके आते ही मिट गई! इसका लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा और इसके कारण इनमेंसे कितने ही 'बुद्ध और संघ' की शरणमें आ गये। बुद्धके हृदयमें लिच्छवियोंके लिए बड़ा ऊँचा स्थान था। अजातशत्रु उनका अनुयायी था और लिच्छवियोंको पराजित करनेके विषयमें उनका विचार जानना चाहता था। बुद्धने उसके प्रश्नके उत्तरमें कहा कि—

'जब तक बृजि जाति नियमित रूपसे अपनी सभा या पंचायतके अधिवेशन करती है, जब तक उसमें प्रेम और एकता है, जबतक वे लोग अपनी प्राचीन मर्यादाका पालन करते हैं और अपनी परम्परा नहीं तोड़ते, जब तक वे अपने गुरुजनोंके आदर और सम्मानसे विमुख नहीं होते; जबतक कोई पराई स्त्री या बालिकाको बल या छलसे लेनेका अन्याय या अनाचार नहीं करता; जब तक वह जाति अपने धार्मिक आचार, विचार या जीवनमें किसी प्रकारकी उच्छृंखलता या असौजन्य नहीं दिखाती, तबतक उसका अभ्युदय छोड़कर अधःपात नहीं हो सकता।"

'जबतक उसमें प्रेम और एकता है,' बुद्धका यह वाक्य अक्षरशः सत्य था, और जैसा कि हम देख चुके हैं, अजातशत्रुने

इसी प्रबल भित्ति या आधारको नष्ट करके अपने शत्रुओंकी स्वतन्त्रताका विनाश किया।

दूसरी यात्रामें बुद्धने अम्बपाली नामकी गणिकाका आतिथ्य स्वीकार किया। पहले वे उसके बगीचेमें ठहरे थे और फिर उसके घरपर आ गये। लिच्छवियोंको यह बात नापसन्द हुई, पर बुद्धने अपने सदुपदेशसे उनका परितोष कर दिया। इस यात्रामें वैशालीके कूटागार नामक स्थानमें उनके कई सम्भाषण हुए और इससे उनके अनुयायियोंकी संख्या और भी बढ़ी। उनकी तीसरी यात्रा तब हुई जब वह परिनिर्वाण या परलोक-यात्राकी तैयारी कर चुके थे। उन्हें वैशाली होकर कुशी-नगर जाना था और लिच्छवियोंने उनके अन्तिम दर्शन कर अपनेको धन्य माना। पर इस बार लोगोंने उन्हें अपने थोड़ेसे शिष्योंके ही साथ वैशालीसे बिदा न होने दिया। हजारों नर-नारी उनके साथ हो लिये और किसी तरह लौटनेको राजी न हुए। अन्तमें बुद्धको अपने योग-बलका प्रयोग करना पड़ा और चम्पारन जिलेके केसरिया नामक स्थानके पास उन्होंने, अपने और उन लिच्छवियोंके बीच, सहसा एक गहरी नदीको पैदा कर दिया। इसके पूर्व वह उन्हें अपना भिक्षा-पात्र दे चुके थे। अपने आराध्य देवके उसी स्मारकके साथ उन भक्तोंको विवश होकर वैशाली लौटना पड़ा। केसरियामें इस समय भी एक स्तूप है, और समझा जाता है कि यह लिच्छवियोंद्वारा उस स्थानकी स्मृति-रक्षाके लिए बनाया गया था जहाँ उन्हें बुद्धका भिक्षा-पात्र प्राप्त हुआ था। केसरियाके पास भेखवा और बाया नामकी दो क्षुद्र नदियाँ हैं; पर मालूम नहीं, इनमें कौन-सी भगवान् बुद्धके योग-बलसे निकली थी। बायाके दर्शन मुजफ्फरपुरसे बसाढ़ जाते समय भी होते हैं।

बुद्धके बाद वैशालीकी यात्रा करनेवालोंमें अशोकका नाम विशेष उल्लेखनीय है। वह नेपाल जाते समय यहाँ ठहरा था। इस स्थानपर उसने एक स्तम्भ आरोपित किया था जिसके दर्शनार्थ आज भी दूर दूरके लोग बसाढ़ पहुँचते हैं। यह स्तम्भ नीचेसे ऊपर तक एक ही शिला-खण्ड है और इसका शीर्ष-भाग एक सिंहकी भव्यमूर्तिसे मण्डित है। जमीनके ऊपर स्तम्भकी ऊँचाई २४ फीट बताई जाती है। स्तम्भपर अशोकका कोई लेख खुदा हुआ नहीं है, पर यात्रियोंने उसपर अपने नाम खोद-खोदकर उसके आधे हिस्सेकी सूरत बिगाड़ डाली है। इनमें अधिकांश अँग्रेजोंके नाम हैं और जान पड़ता है कि उनकी सन् १७९३ से ही इस स्तम्भपर दयादृष्टि है। अनुमान किया जाता है कि ईसाके प्रायः २५० वर्ष पूर्व यह स्तम्भ आरोपित हुआ था। उस समय नेपाल मगधके अधीन था और अशोकने अपनी इस यात्राके स्मारक-स्वरूप कहीं स्तम्भ और कहीं स्तूप बनवा दिये थे। पटनेसे नेपालका रास्ता वैशाली या बसाढ़, केसरिया, लौरिया, अरराज, बेतिया, लौरिया, नन्दनगढ़, जानकीगढ़ और रामपुरवा होकर था। इनमें नन्दनगढ़ और अरराजमें भी अशोकके स्तम्भ हैं और उनपर उसके धर्म लेख भी पाये जाते हैं। रामपुरवाके स्तम्भकी हालत खराब है।

वैशालीके महत्त्वके ही कारण यहाँ बौद्धोंका इतिहास-प्रसिद्ध द्वितीय धार्मिक सम्मेलन हुआ था। यह भगवान् बुद्धकी निर्वाण-प्राप्तिके प्रायः ११० बरस बादकी बात है। उस समय वैशालीके

भिक्षुओंका आग्रह था कि धार्मिक विषयोंमें उन्हें कुछ अधिक स्वतंत्रता मिलनी चाहिए पर बाकी भिक्षुओंको यह मंजूर न था। उनका कहना था कि बन्धन ढीला करनेका परिणाम बड़ा भयङ्कर होगा और अन्तमें स्वतन्त्रता उच्छृङ्खलताका रूप धारण कर लेगी। वैशालीके सम्मेलनका उद्देश्य इसी झगड़ेका निबटारा करना था। इसमें ७०० से अधिक भिक्षु-प्रतिनिधियोंने भाग लिया और बड़े वाद-विवादके बाद यह निश्चय हुआ कि वैशालीवालोंकी बात न मानी जाय। जान पड़ता है कि उस समयके प्रतिनिधित्व-सम्बन्धी नियम बहुत कड़े थे क्योंकि वैशालीमें सम्मेलन होनेपर भी वैशाली-वालोंको हार खानी पड़ी।

दन्तकथा है कि कनिष्क एक बार वैशाली आया और यहाँसे बुद्धका वह भिक्षा-पात्र अपने साथ लेता गया जो लिच्छवियोंको उनसे प्राप्त हुआ था। ईसाकी चतुर्थ शताब्दिके आरम्भमें पाटलिपुत्रके तत्कालीन शासक चन्द्रगुप्तका विवाह लिच्छवि-वंशकी एक राजकुमारीके साथ हुआ। बीचमें जान पड़ता है, वैशालीका फिर बल-विस्तार हो चला था, क्योंकि इस विवाहके फलस्वरूप चन्द्रगुप्तकी पद-प्रतिष्ठा और मान-मर्य्यादा बहुत बढ़ गई।

प्रसिद्ध चीनी यात्री फा-हियान और ह्वेनसाङ्ग भी वैशाली पहुँचे थे। फा-हियान ईसाकी पाँचवीं शताब्दिके आरम्भमें वहाँ गया और ह्वेनसाङ्ग सातवीं शताब्दिमें। ह्वेनसाङ्गने लिखा है कि वैशाली नगरका घेरा १२ मीलका था और उसके पहुँचनेके समय वहाँ बौद्धोंके अलावा हिन्दू और जैन भी रहते थे। पर बौद्धधर्मका क्रमशः लोप हो रहा था और नगर भी बड़ी अवनत अवस्थामें था। इनके अलावा दो

और चीनी वैशाली आये। इनमें एकका नाम वंग-ह्वेनसी और दूसरेका इत्-सिंग था। ह्वेनसाङ्गकी यात्राके समय वैशाली और उसके आसपासके प्रदेश हर्षवर्द्धनके साम्राज्यके अन्तर्गत थे, पर इसके बाद उसकी उत्तरोत्तर अवनति ही होती गई और इस समय तो बसाढ़के लोगोंको इतना भी नहीं नहीं मालूम कि उस स्तम्भका निर्माता कौन था और उसके निर्माणका अभिप्राय क्या था।

अन्तमें वैशालीकी सबसे बड़ी विशेषताके सम्बन्धमें कुछ लिखना है। यह विशेषता और कुछ नहीं, यहाँकी शासन-पद्धति थी। लिच्छवियोंके कई वर्ग या कुल थे और प्रत्येकका एक अधिपति होता था जिसे 'राजा' कहते थे। इन राजाओंकी एक सभा या पंचायत थी और इसीके द्वारा वैशालीका राज्य-शासन होता था। गणाधिपतियोंकी संख्या ७७०७ बताई जाती है, क्योंकि वैशालीमें इतने ही लिच्छवि-परिवार थे। कुछ विषयोंमें ये बिलकुल स्वतंत्र थे, और कुछ विषयोंमें इन्हें सभा या समष्टिके निर्णयके अनुसार चलना पड़ता था। इनकी संख्या और इनके अधिकार चाहे जो रहे हों, यह निश्चित है कि 'रिपब्लिक' या प्रजातंत्र इस देशके लिए कोई नई बात नहीं है।

प्रत्येक वंश या कुलके राजाका एक खास तालाबके जलसे अभिषेक-संस्कार होता था। इस तालाबके चारों ओर लोहेका ऐसा जाल था कि पक्षी भी उसमें होकर नहीं आ-जा सकते थे। और वहाँ रात-दिन बड़ा कड़ा पहरा रहता था। इस तालाबकी दूर दूर तक ख्याति थी और एक जगह लिखा है कि कोशलके सेनापतिकी स्त्रीने गर्भवती होनेपर अपने पतिसे कहा कि, "स्वामिन्, मैं वैशाली जाकर उस सरोवरमें स्नान करना चाहती हूँ जिसके पवित्र जलसे वहाँके

राजाओंका अभिषेक होता है। ” बसाढ़में इस समय भी कई पुराने तालाब मिलते हैं, पर मालूम नहीं इनमें बौद्ध साहित्यकी वैशालीके गण-राजाओंके अभिषेककी पुष्करिणी होनेका गौरव किसे प्राप्त था।

प्राचीन समयमें यह नगर तीन भागोंमें बँटा हुआ था। खास वैशालीमें अधिकतर ब्राह्मणोंकी बस्ती थी। कुण्डग्राम, जिसे आजकल बासुकुण्ड कहते हैं, क्षत्रियोंका निवास-स्थल था और वणिक ग्राम या आधुनिक ‘ बनिया ’ में विशेषतः वैश्य रहते थे। नगरके चारों ओर तीन बड़ी बड़ी दीवारें थीं और किलेमें प्रवेश करनेके लिए चारों ओर तीन बड़े बड़े दरवाजे थे। ह्वेनसाँगके समयमें ही अधिकांश इमारतें टूट-फूट चुकी थीं और इस समय तो एक भी दीवार कहीं खड़ी नजर नहीं आती।

प्रश्नावली

१ निम्नलिखित शब्दोंके अर्थ लिखो और उन्हें वाक्यमें प्रयुक्त करो—
विशेषज्ञ, संस्मरण, अपभ्रंश, कूट-नीति, कृतार्थ, परामर्श, उदासीन, अक्षरशः, शीर्ष-भाग, उच्छृङ्खलता, संस्कार, पुष्करिणी।
२ अजातशत्रुने किस प्रकार लिच्छवियोंको पराजित किया?
३ लिच्छवियोंके सम्बन्धमें तुम क्या जानते हो?

तुम हमारे कौन हो?

तुम हमारे कौन हो ? रोज सुबहके वक्त चारों दिशाओंमें अपनी हजारों किरणें फैलाकर तुम हमारे पास आते हो और साँझ होते ही अँधेरेमें अपना मुँह छिपा लिया करते हो। बताओ, तुम्हारा क्या नाम है, और तुम हमारे कौन हो ? तुम्हारे साथ हम लोगोंका ऐसा कौन-सा गहरा नाता है कि तुम्हारी सूरत देखते ही दुनिया हँसने लगती है ? मर्द, औरत, चिड़ियाँ, चौपाये, सब तुम्हें देखते ही खुश होकर अपने अपने कामोंमें लग जाते हैं, और तुम्हारे चले जाते ही दुनिया-भरका चेहरा उदासीसे भर जाता है, सब लोग अपना कारबार छोड़ देते हैं और नींदमें गड़प हो जाते हैं। गरमीसे चाहे जान निकलती हो, पर तो भी बिना तुम्हारे काम नहीं चलता। बताओ तो सही, इसके मानी क्या हैं ?

मेरा नाम सूर्य है। मेरे और भी नाम हैं दिनकर, दिवाकर, प्रभाकर, रवि, भानु, आदित्य, अंशुमाली वगैरह; पर, सरकारी नाम मेरा 'सूरज' है। लड़के 'सूर्य' कहेंगे तो इम्तिहानमें नालायक समझे जायँगे। पर मुझे इससे क्या ? इसके सिवा मेरे और भी कितने ही नाम हैं। और और कौमके लोग मुझे और और नामोंसे पुकारते हैं। पहले लोग मुझे देवता जानकर मेरी पूजा करते थे; अब भी हिन्दुस्तानमें हजारों आदमी मेरी पूजा करते हैं; संस्कृत भाषामें मेरी अस्तुति करते हैं; मुझे नमस्कार करते हैं। पर मैं जानता हूँ, मैं कौन हूँ। मैं जानता हूँ, मैं देवता नहीं हूँ। मेरी क्या ताक़त कि मैं भगवानके आसनका दावा करूँ ? उन्होंने जो यह सारा सामान रच रक्खा

है जिसे तुम लोग पण्डिताऊ हिन्दीमें 'ब्रह्माण्ड' कहते हो, उसका न ओर और न छोर। ऐसे बे-हद बे-हिसाब ब्रह्माण्डके सामने मेरी गिनती बालूकी एक कनीसे भी छोटी है; मेरे-से सैकड़ों करोड़ों सूरज इस आसमानमें रात-दिन घूम रहे हैं। उनमेंसे बहुत-से ऐसे भी हैं जो मुझसे भी कहीं बड़े हैं। तुम्हारी इस दुनियाका घेरा सिर्फ पचीस-तीस हजार कोस है, इतनेहीमें तुम लोगोंके गरूरका ठिकाना नहीं। मैं इतना बड़ा हूँ कि मुझे तोड़कर अगर तुम्हारी दुनियाके बराबर बारह लाख पचीस हजार दुनिया गढ़ी जावें, तो, तिसपर भी जो थोड़ा-बहुत माल-मसाला बचा-खुचा रह जावेगा उससे ४३ दुनिया और भी बन सकेंगी। मुझसे भी बड़े बड़े और कितने ही सूरज हैं। उन सबके साथ साथ तुम्हारी दुनिया और चाँदके बराबर कई सितारे (जिन्हें पडित लोग ग्रह और उपग्रह कहते हैं) रहते हैं। वे इन सितारोंको साथ लेकर इस बे-ओर-छोरवाले आसमानके मैदानमें टहलते रहते हैं। भला कुछ ठिकाना है! जरा सोचो तो सही कि यह कैसी बात है! इसके सामने मुझ वेचारेकी क्या हैसियत! तुम्हारी दुनिया तो किसी गिनतीहीमें नहीं।

खैर, मैं तुम्हारा कौन हूँ, अब तुम्हें बतलाता हूँ। तुम्हारी दुनिया मेरे ही बदनका एक हिस्सा है। इनसानने दूरबीन नामकी एक कल बनाई है। उस कलमेंसे देखनेसे सब सितारोंके बीचों बीच सफेद-सी, एक चीज़ देख पड़ती है। ज्योतिषी लोग उसे अँग्रेज़ीमें 'नेबुला' कहते है, तुम चाहे उसे 'बाष्प-पुञ्ज' कह लो। सरकारकी चलाई हुई 'हिंदु-स्तानी' जबानमें देखें, उसे क्या कहते हैं। (चाहे जो कहें, संस्कृत, फ़ारसी या अरबी: इनमें किसीकी मदद ज़रूर लेनी पड़ेगी; शायद

संस्कृतहीको काले पानीका हुक्म होगा !) पर तुम लोग सरकार अँग्रेज़की रियाया हो, तुम्हें इन झगड़ोंसे क्या काम ? तुम भी उन धब्बोंको 'नेबुला' ही कहो तो अच्छा। ये नेबुला ठोस चीजोंके छोटे छोटे हिस्से हैं। संस्कृतवाले इन्हें 'जड़ परमाणु' कहते हैं। बहुत गरमीसे पिघलकर वे धुएँ या भाफकी सूरतमें हो गये हैं। पहले पहल,—सैकड़ों करोड़ों वर्ष पहले मेरी भी ऐसी ही हालत थी। मैं एक भारी नेबुलाका ढेर था। तब तुम्हारी दुनियाका कहीं पता तक नहीं था; न तब चाँद ही था ;

धीरे धीरे गरमी घट जानेसे भाफ जमने लगी है। पर गर्मीकी तेजीसे कभी कभी मुझमेंसे बहुत-से टुकड़े टूटकर अलग करोड़ों कोसकी दूरीपर जा गिरे हैं और उनकी गरमी घट जानेसे उनका ऊपरी हिस्सा जमकर कड़ा हो गया है। पर उनकी वह सब गरमी अभी चुक नहीं गई है। मैं हमेशा पश्चिमसे पूरबकी तरफ घूमा करता हूँ; इसीलिए, उन टुकड़ोंने भी वही चाल पकड़ी है। सिर्फ यही नहीं, वे मुझे बिलकुल छोड़ नहीं सके हैं; छोड़नेसे भला उनका काम चल सकता है ? मैं भी उन्हें छोड़ जाने नहीं देता; जोरसे उन्हें मैं अपनी ओर खींचे रहता हूँ। तुम्हारी दुनियामें ज्वालामुखी पहाड़ोंका आग उगलना, भूचाल, गरम सोते वगैरह उसी गरमीकी गवाही दे रहे हैं। पर उसके ऊपरका हिस्सा बहुत-कुछ ठण्डा हो गया है। इसीसे तुम लोग उसपर रह सकते हो।

अजी, मैं न होता तो तुम लोग जीते भी न रहते। मेरे ही कारण तुम लोग जी रहे हो। मैंने तो पहले ही कह दिया है कि तुम्हारी दुनियाकी गरमी घट रही है। मैं न रहता तो उसकी सब आग

बुझकर वह इतनी ठंडी हो जाती कि उसपर कोई जानवर न रह सकता, किसी तरहकी पेड़ पत्ती तक न उग सकती। मेरी गरमी और मेरा उजियाला न होता तो अनाजका एक दाना भी देखनेको न मिलता। गरमीके दिनोंमें जब तुम लोग अच्छे अच्छे दलदार बम्बई वगैरहके मीठे मीठे आम खाते हो, क्या तब मेरी बात कभी याद आती है? जब खरबूजे, तरबूज, लीची या दूधिये नारियल उड़ाते हो, उस वक्त क्या एक दफा भी यह बात तुम्हारे ध्यानमें आती है कि मैं हूँ, इसीसे तुम इन लज़ीज़ फलोंपर हाथ फेरते हो?

गरमियोंमें जब जलती हुई लुएँ चला करती हैं तब शायद मन ही मन,—मन ही मन क्यों खुल्लमखुल्ला भी,—तुम लोग मुझे गालियाँ दिया करते हो, मेरे ऊपर कितनी ख़फ़गी दिखलाते हो! पर जब रातको खिलती हुई चाँदनीमें गंगा-किनारे दस-पाँच यार दोस्त एक साथ मिलकर ठंढी ठंढी हवामें दिल बहलाते हो, या हवाके झोंकेसे पेड़ोंपर पत्तियोंकी सरसराहट या गंगामें उठती हुई लहरोंकी कलकलाहटको सुनकर खुश होते हो, या जब उन लहरोंपर चाँदकी हँसती हुई परछाईं खेला करती है, जब सारी नदी हीरे मोतियोंसे जड़ी हुई रुपहली चादर-सी जँचने लगती है, जब चाँदनीमें तुम्हारे चारों तरफ़ सब चीज़ें झकाझक देख पड़ती हैं, जब इन सबोंको देखकर तुम्हारे दिलकी चाँदनी उमड़ आती है; तब क्या उस वक्त एक बार भी तुम सोचते हो कि मैं हूँ, इसीसे वह नदी तुम्हारे सामने बहती है; मैं हूँ इसीसे वह हवा चलती है; मेरी ही रोशनीसे चाँदकी चाँदनी है? मुझहीसे भीख

माँगी हुई चाँदनीकी तुम्हारे शायर लोग इतनी तारीफ करते हैं ? भीखमें पाई दौलतहीको देखकर लोगोंने चाँदका इतना घमण्ड बढ़ा दिया है ? जाओ, आदमी बड़े नमकहराम है । मैं तो उनके लिए दिन-रात मेहनत करके मरूँ और वे एक बार भी मेरा एहसान न मानें ! चाँदकी तारीफमें कितनी शायरी ! कितनी कविता !! कितने अस्लोक !!! चाँदकी इतनी वाहियात खुशामद ! कवीश्वर लोग सब पागल हैं । क्यों, क्या मैं यों ही किसी कूड़ेखानेमें मुफ्तका पड़ा मिल गया हूँ ? चाँद बहुत दिनोंमें, ठहर ठहरकर, तुम लोगोंसे आकर मिलता है, क्या इसीसे तुम उसकी इतनी खातिरदारी करते हो ? और मैं रोज आया-जाया करता हूँ, इसीलिए मैं पुराना हो गया ? अच्छा इन्साफ़ है ! पर तुम लोगोंसे भला कोई और क्या इससे ज्यादा उम्मीद कर सकता है ? जिसने तुम्हें जिस्म, जान,—सब कुछ दिया; जिसने सारे जहानको रचा; जिसने सैकड़ों तरहसे तुम्हें खुश रक्खा; जो तुम लोगोंको इतना चाहता है;—उसको भी जब तुम दिन-रातमें एक बार भी याद नहीं करते, फिर मैं तो ठहरा सिर्फ मिट्टीका एक ढेर जड़-पिण्ड ! मैं प्यार करना नहीं जानता,—दिन-रात सिर्फ़ मेहनत ही किया करता हूँ, मैं क्यों कर यह उम्मीद करूँ कि तुम मेरी भी कभी याद करोगे ?

तुम लोग समझते होगे कि मैं चाँदसे डाह कर रहा हूँ । मुतलक नहीं । तुम उसकी चाहे जितनी तारीफ़ क्यों न करो, उससे मेरी ही नामवरी होगी; मेरी बदनामी कुछ भी नहीं । तुम्हारी दुनियाके बराबर चाँद भी मेरा ही एक टुकड़ा है; मेरी ही रोशनीसे वह ऐसा भला देख पड़ता है । मैं उससे क्यों डाह करने लगा ? पर हाँ,

मुझसे इतना फायदा उठाकर तुम लोग मेरी एक भी बात नहीं सोचते। इसीसे जीमें आता है कि तुम लोग बड़े नमकहराम हो, बड़े ही ना-शुकरे हो। पहले दिनोंमें लोग मेरी पूजा करते थे। और अब, तुम लोगोंने मुझसे नाता तक उठा लिया! अफसोस!

अपने मुँह आप मियाँ मिठ्ठू बनना ठीक नहीं है; और फिर तुम लोग ऐसे भले आदमी हो कि तुमसे बात कहनेको जी ही नहीं चाहता; अभी कहने लगोगे कि मैं अपनी तारीफ करनेके लिए बढ़ा बढ़ाकर बातें बना रहा हूँ। पर तुम्हींने पूछा है कि मैं तुम्हारा कौन हूँ; और बात जब मैंने छेड़ ही दी है तब उसे सब कह ही डालना चाहिए। इसीसे मुझे जो कुछ कहना है, मैं कहता हूँ; तुम्हारे जीमें जैसा आवे वैसा ही समझ लेना। एक बात और कहता हूँ। पहले ही कह चुका हूँ कि इस भारी ब्रह्माण्डमें मैं बालूकी नोकसे भी नाचीज़ हूँ; अगर मुझमें कुछ ताकत है तो वह भगवान्‌की दी हुई है, तब फिर मुझे किस बातकी शेख़ी? तारीफ मेरी किस्मतमें कहाँ? अगर मुझमें कोई हुनर हो तो उससे मेरे मालिककी ही बड़ाई होगी, मेरी नहीं। अच्छा, मेरी और मेरे मालिककी बड़ाई रहने दीजिए, मैं जब आप लोगोंकी खिदमतके लिए मुकर्रर हुआ हूँ तो लो, मैं आपहीकी तारीफ़ करता हूँ; मैं हूँ आपका नौकर। बिना कौड़ी-पैसा लिये मैं आप लोगोंका पंखा-कुली हूँ; आप लोगोंका भिश्ती पानी-पाँड़े हूँ।—मेरी बात समझमें नहीं आई? अच्छा, समझाकर कहता हूँ।

मैं तब कह रहा था कि मेरी ही करामातसे नदी बहती है; मेरी ही चलाई हवा भी चलती है। मैंने ऐसा क्यों कहा? गरमियोंमें

जब तुम लोग सोचते हो कि दुनिया धूपमें जल रही है, उस वक्तमैं तुम्हारे लिए पानी और हवा इकट्ठा करता हूँ। जब कभी किसीके मकानमें आग लगती है तब तुम लोगोंने देखा होगा कि चारों तरफ हवा चलने लगती है। ऐसा क्यों होता है सो जानते हो? सुनो, जहाँ आग लगती है वहाँकी हवा आगकी गरमीसे पतली और हलकी होकर ऊपरको चढ़ जाती है और उस हवाकी खाली जगहमें आसपासकी ठंढी और घनी हवा भर जाती है। गरमियोंमें मैं तुम्हारे इस हिन्दुस्तानको बहुत तपा देता हूँ, तब यहाँकी हवा हलकी होकर आसमानमें चढ़ जाती है और उसकी खाली जगह भरनेके लिए दक्खिनी समन्दरसे ठंडी हवा हिन्दुस्तानकी तरफ बहने लगती है। उस हवाको पाकर तुम्हें कैसा आराम मिलता है! तो भी तुम एक बार भी यह नहीं कबूल करते कि हवा मैं तुम्हें ला देता हूँ। तुम्हारे हिन्दुस्तानमें ही नहीं, सब मुल्कोंमें, सब समन्दरोंमें, मेरे ही सबबसे हवा चला करती है। इससे तुम्हारे बनिज-बैपारको फायदा पहुँचता है; जहाज सब मुल्कोंसे तुम्हारे लिए आरामकी चीज़ें ले आते हैं; हवा न होती तो जहाज़ न चलते।

और देखो, मेरी ही गरमीसे समन्दरका पानी भाफ बनकर हवामें मिल जाता है और जब समन्दरसे हवा ज़मीनकी ओर बहती है तब वह भाफ भी जो कि दिखाई नहीं पड़ती ज़मीनपर आती है। यह भाफ भी मेह, ओस, कुहरा और ओला बनकर ज़मीनपर गिरती है और ठंडक पहुँचाकर उसे उपजाऊ बनाती है। हिमालयके बर्फसे गंगा निकली है। वह बर्फ़ भी इसी भाफसे बनती है। मेहका पानी जो मिट्टी, पत्थर वगैरहमें घुसकर फौवारेकी सूरतमें साल-भर तक

नदियोंको भरता है, वह भी इसी भाफसे बनता है। सिर्फ़ यही नहीं, बदनपर कपड़ोंकी तरह वह भाफ दुनियाको जाड़े और गरमी-की ज़ियादतीसे बचाती है। भाफका कपड़ा न रहता तो दिनमें मेरी किरनोंकी गरमी तुम लोगोंसे कभी बरदाश्त न होती, रातमें दुनिया-की गरमी जल्द निकल जाती और सब जगह बर्फ़ जम जाती। भाफ न होती तो बादल भी न होते, न मेह बरसता; नदियाँ सूख जातीं और सारी दुनिया जानदारोंके रहने काबिल न रहती।

अब तुम लोगोंने समझा, मैं तुम्हारा कौन हूँ ! दिनभर बकबक करके मैंने तुमसे अपना हाल कहा; अब साँझ हो आई, मुझे भी अब इस दुनियाकी दूसरी तरफ़ उजियाला पहुँचाना है। तुम लोग आराम करो, मुझे आराम मयस्सर नहीं, इसलिए मैं जाता हूँ। राम राम।

प्रश्नावली

१ निम्नलिखित शब्दोंके अर्थ लिखो और उन्हें वाक्योंमें प्रयुक्त करो—
लज़ीज़, हैसियत, मयस्सर, मुतलक, नाचीज़, क़ाबिल।

२ 'सूर्य' पर निबन्ध लिखो।

३ चन्द्रमा यदि अपना वृत्तान्त कहे तो किस प्रकार कहेगा !

४ निम्नलिखित शब्दोंके शुद्ध रूप लिखो—
भाखा, अस्तुति, गरूर, अस्लोक, समन्दर, बनिज-बैपार, किरनें।

५ निम्नलिखित मुहाविरोंका वाक्योंमें उपयोग करो—
नींदमें गड़प होना, चुक जाना, चाल पकड़ना, देखनेको न मिलना, मुफ्तका या मुफ्तमें मिलना, नाता उठा लेना, बरदाश्त होना, मयस्सर होना।

पञ्च-परमेश्वर

जुम्मन शेख़ और अलगू चौधरीमें गाढ़ी मित्रता थी। साझेमें खेती होती थी, कुछ लेन-देनमें भी साझा था। एकको दूसरेपर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गये थे तब अपना घर अलगूको सौंप गये थे; और अलगू जब कभी बाहर जाते जुम्मनपर अपना घर छोड़ देते थे। उनमें न खान-पानका व्यवहार था न धर्मका नाता, केवल विचार मिलते थे; और मित्रताका यही मूल मन्त्र है।

इस मित्रताका जन्म उसी समय हुआ जब दोनों मित्र बालक ही थे और जुम्मनके पूज्य पिता जुमेराती उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। अलगूने गुरुजीकी बहुत सेवा की,—खूब रिकाबियाँ माँजी, खूब प्याले धोये। उनका हुक्का एक क्षणके लिए भी विश्राम न लेने पाता था क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगूको आध घण्टे तक किताबोंसे मुक्त कर देती थी। अलगूके पिता पुराने विचारोंके मनुष्य थे। शिक्षाकी अपेक्षा उन्हें गुरुकी सेवा-शुश्रूषापर अधिक विश्वास था। वे कहते थे कि विद्या पढ़नेसे नहीं आती, जो कुछ होता है गुरुके आशीर्वादसे होता है। बस, गुरुजीकी कृपा-दृष्टि चाहिए। अतएव, यदि अलगूपर जुमेराती शेखके आशीर्वाद अथवा सत्संगका कुछ फल न हुआ तो उसने यह मानकर सन्तोष कर लिया कि विद्योपार्जनमें मैंने यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रखी; विद्या उसके भागहीमें न थी, तो कैसे आती ?

मगर जुमेराती शेख़ स्वयं आशीर्वादके क़ायल न थे। उन्हें अपने सोंटेपर अधिक भरोसा था। और, उसी सोंटेके प्रतापसे आज

आस-पासके गाँवमें जुम्मनकी पूजा होती थी। उनके लिखे हुए रेहननामे या बैनामेपर कचहरीका मुहर्रिर भी कलम न उठा सकता था। हल्केका डाकिया, कान्सटेबिल और तहसीलका चपरासी,—सब उनकी कृपाकी आकांक्षा करते थे। अतएव, अलगूका मान उनके धनके कारण था तो जुम्मन शेख अपनी अमोल विद्याहीसे सबके आदर-पात्र बने थे।

२

जुम्मन शेखकी एक बूढ़ी खाला (मौसी) थीं। उनके पास कुछ थोड़ी-सी मिलकियत थी। परन्तु उनके निकट-सम्बन्धियोंमें कोई न था। जुम्मनने लम्बे-चौड़े वादे करके वह मिलकियत अपने नाम चढ़वा ली थी। जब तक दान-पत्रकी रजिस्टरी न हुई थी तब तक खाला-जानका खूब आदर-सत्कार किया गया, खूब स्वादिष्ट पदार्थ उन्हें खिलाये गये, हलुवे-पुलावकी वर्षा-सी की गई, पर रजिस्टरीकी मुहरने इन खातिरदारियोंपर भी मानो मुहर लगा दी। जुम्मनकी पत्नी करीमन रोटियोंके साथ कड़वी बातोंके कुछ तेज़ तीखे सालन भी देने लगी। जुम्मन शेख भी निठुर हो गये। अब बेचारी खाला-जानको प्रायः नित्य ही ऐसी बातें सुननी पड़ती थीं—

“बुढ़िया न जाने कब तक जियेगी! दो-तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया है मानो मोल ले लिया है। बघारी दालके सिवा रोटियाँ नहीं उतरतीं। जितना रुपया इसके पेटमें झोंक चुके उतनेसे तो अबतक एक गाँव मोल ले लेते।”

कुछ दिन खाला-जानने सुना और सहा, पर जब न सहा गया तब जुम्मनसे शिकायत की। जुम्मनने स्थानीय कर्मचारीके,—गृह-

स्वामिनीके प्रबन्धमें दखल देना उचित न समझा। कुछ दिन तक और यों ही रो-धोकर काम चलता रहा। अन्तमें एक दिन खालाने जुम्मनसे कहा, "बेटा, तुम्हारे साथ मेरा निर्वाह न होगा। तुम मुझे रुपये दे दिया करो, मैं अपना अलग पका-खा लूँगी।"

जुम्मनने धृष्टताके साथ उत्तर दिया, "रुपये क्या यहाँ फलते हैं?" खालाने नम्रतासे कहा, "मुझे कुछ रूखा-सूखा भी चाहिए कि नहीं?" जुम्मनने गम्भीर स्वरसे जवाब दिया, "तो कोई यह थोड़े ही समझा था कि तुम मौतसे लड़कर आई हो?"

खाला बिगड़ गईं। उन्होंने पञ्चायत करनेकी धमकी दी। जुम्मन हँसे, जिस तरह कोई शिकारी हिरनको जालकी तरफ जाते देखकर मन ही मन हँसता है। वे बोले "हाँ, जरूर पञ्चायत करो। फैसला हो जाय। मुझे भी यह रात-दिनकी खटपट पसन्द नहीं।"

पञ्चायतमें किसकी जीत होगी, इस विषयमें जुम्मनको कुछ भी सन्देह न था। आस-पासके गाँवोंमें ऐसा कौन था जो उनके अनुग्रहोंका ऋणी न हो? कौन ऐसा था जो उनका शत्रु बननेका साहस कर सके? किसमें इतना बल था जो उनका सामना कर सके? आसमानके फरिश्ते तो पञ्चायत करने आवेंगे ही नहीं!

३

इसके बाद कई दिन तक बूढ़ी खाला हाथमें एक लकड़ी लिये आसपासके गाँवोंमें दौड़ती रही। कमर झुककर कमान हो गई थी, एक एक पग चलना दूभर था। मगर बात आ पड़ी थी। उसका निर्णय करना ज़रूरी था।

बिरला ही कोई भला आदमी होगा जिसके सामने बुढ़ियाने दुःखके

आँसू न बहाये हों। किसीने तो यों ही ऊपर मनसे 'हूँ हाँ' करके टाल दिया, किसीने इस अन्यायपर ज़मानेको गालियाँ दीं; कहा, "क़ब्रमें पाँव लटके हुए हैं; आज मरे कल दूसरा दिन; पर हवस नहीं मानती। अब तुम्हें क्या चाहिए? रोटी खाओ और राम राम करो। तुम्हें खेती-बारीसे अब क्या काम? कुछ ऐसे सज्जन भी थे जिन्हें हास्यके रसास्वादका अच्छा अवसर मिला। झुकी हुई कमर, पोपला मुँह, सन-से बाल: जब इतनी सामग्रियाँ एकत्र हों तब हँसी क्यों न आवे? ऐसे न्याय-प्रिय, दयालु, दीन-वत्सल पुरुष बहुत कम थे जिन्होंने उस अबलाके दुखड़ेको गौरसे सुना हो और उसको सान्त्वना दी हो। चारों ओर घूम-घाम कर बेचारी अलगू चौधरीके पास आई। लाठी पटक दी और दम लेकर बोली, "बेटा, तुम भी छन-भरके लिए मेरी पञ्चायतमें चले आना।"

अलगू—मुझे बुलाकर क्या करोगी? कई गाँवके आदमी तो आवेहींगे।

खाला—अपनी विपद तो सबके आगे रो आई हूँ। आने न आनेका अख़्तियार उनको है। हमारे ग़ाज़ी मियाँ गायकी गुहार सुनकर पीढ़ीपरसे उठ आये थे। क्या एक बेकस बुढ़ियाकी फरियाद पर कोई न दौड़ेगा?

अलगू—यों आनेको मैं आ जाऊँगा; मगर पञ्चायतमें मुँह न खोलूँगा।

ख़ाला—क्यों बेटा?

अलगू—अब इसका क्या जवाब दूँ? अपनी खुशी। जुम्मन मेरे पुराने मित्र हैं। उनसे बिगाड़ नहीं कर सकता।

ख़ाला—बेटा, क्या बिगाड़के डरसे ईमानकी बात न कहोगे ?

हमारे सोये हुए धर्म-ज्ञानकी सारी सम्पत्ति लुट जाय, उसे ख़बर नहीं होती। परन्तु ललकार सुनकर वह सचेत हो जाता है, फिर उसे कोई जीत नहीं सकता। अलगू इस सवालका कोई उत्तर न दे सके। पर उनके हृदयमें ये शब्द गूँज रहे थे. 'क्या बिगाड़के भयसे ईमानकी बात न कहोगे ?'

४

सन्ध्या-समय एक पेड़के नीचे पञ्चायत बैठी। शेख जुम्मनने पहलेहीसे फ़र्श बिछा रक्खा था। उन्होंने पान, इलायची, हुक्के, तंबाकू आदिका प्रबन्ध भी किया था। हाँ, वे स्वयं अलबत्ता अलगू चौधरीके साथ जरा दूर बैठे हुए थे। जब कोई पञ्चायतमें आता था तब दबे हुए सलामसे उसका 'शुभागमन' करते थे। जब सूर्य्य अस्त हो गया और चिड़ियोंकी कलकल-युक्त पञ्चायत पेड़ोंपर बैठी तब यहाँ भी पञ्चायत शुरू हुई। फ़र्शकी एक एक अंगुल ज़मीन भर गई पर अधिकांश दर्शक ही थे। निमन्त्रित महाशयोंमेंसे केवल वही लोग पधारे थे जिन्हें जुम्मनसे अपनी कसर निकालनी थी। एक कोनेमें आग सुलग रही थी। नाई ताबड़तोब चिलम भर रहा था। यह निर्णय करना असम्भव था कि सुलगते हुए उपलोंसे अधिक धुआँ निकलता था या चिलमके दमोंसे। लड़के इधर-उधर दौड़ रहे थे। कोई आपसमें गाली-गलौज करता और कोई रोता था। चारों तरफ कोलाहल मच रहा था। गाँवके कुत्ते, इस जमावको भोज समझकर, झुण्डके झुण्ड जमा हो गये थे।

पंच लोग बैठ गये तो बूढ़ी खालाने उनसे बिनती की—

"पञ्चो, आज तीन साल हुए मैंने अपनी सारी जायदाद अपने भानजे जुम्मनके नाम लिख दी थी। इसे आप जानते ही होंगे। जुम्मनने मुझे हीनहयात रोटी-कपड़ा देना कबूल किया था। इतने साल तो मैंने इसके साथ रो-धोकर काटे, पर अब रात दिनका रोना नहीं सहा जाता। मुझे न पेटकी रोटी मिलती है और न तनका कपड़ा। बेकस बेवा हूँ। कचहरी दरबार कर नहीं सकती। तुम्हारे सिवा और किसे अपना दुःख सुनाऊँ? तुम लोग जो राह निकाल दो उसी राहपर चलूँ। अगर मुझमें कोई बुराई देखो, मेरे मुँहपर थप्पड़ मारो। जुम्मनमें बुराई देखो तो, उसे समझाओ। क्यों एक बेकसकी आह लेता है? पञ्चोंका हुक्म अल्लाहका हुक्म है। तुम्हारा हुक्म सर-माथेपर चढ़ाऊँगी।"

रामधन मिश्र, जिनके कई आसामियोंको जुम्मनने अपने गाँवमें बसा लिया था, बोले, "जुम्मन मियाँ, किसे पञ्च बदते हो? अभीसे इसका निपटारा कर लो। फिर, जो कुछ पञ्च कहेंगे वही मानना पड़ेगा।"

जुम्मनको इस समय सदस्योंमें विशेष कर वही लोग दीख पड़े जिनसे किसी न किसी कारण उनका वैमनस्य था। जुम्मन बोले, "पञ्चका हुक्म अल्लाहका हुक्म है। खाला जान जिसे चाहें बदें; मुझे कोई उज्र नहीं।"

खालाने चिल्लाकर कहा, "अरे अल्लाहके बन्दे! पञ्चोंका नाम क्यों नहीं बता देता? कुछ मुझे भी तो मालूम हो!" जुम्मनने क्रोधसे कहा, "अब इस वक्त मेरा मुँह न खुलवाओ! तुम्हारी बन पड़ी है, जिसे चाहो पञ्च बदो।"

ख़ाला जान जुम्मनके आक्षेपको समझ गईं। वह बोलीं, "बेटा, खुदासे डरो। कैसी बात कहते हो? पञ्च न किसीके दोस्त होते हैं न किसीके दुश्मन। और किसीपर तुम्हारा विश्वास न हो तो जाने दो; अलगू चौधरीको तो मानते हो? लो, मैं उन्हींको सरपञ्च बदती हूँ। जुम्मन शेख आनन्दसे फूल उठे; परन्तु, भावोंको छिपा कर बोले, "अलगू चौधरी सही। मेरे लिए जैसे रामधन मिसर वैसे अलगू।"

अलगू इस झमेलेमें न फँसना चाहते थे। वे कन्नी काटने लगे; बोले, "खाला, तुम जानती हो कि मेरी जुम्मनसे गाढ़ी दोस्ती है।"

खालाने गंभीर स्वरसे कहा, "बेटा, दोस्तीके लिए कोई अपना ईमान नहीं बेचता। पञ्चके दिलमें खुदा बसता है। पञ्चोंके मुँहसे जो बात निकलती है वह खुदाकी तरफसे निकलती है।

अलगू चौधरी सरपञ्च हुए। रामधन मिश्र और जुम्मनके दूसरे विरोधियोंने बुढ़ियाको मनमें बहुत कोसा।

अलगू चौधरी बोले, "शेख जुम्मन, हम और तुम पुराने दोस्त हैं। जब काम पड़ा तुमने हमारी मदद की है और हमसे भी जो कुछ बन पड़ी, तुम्हारी सेवा करते आए हैं। मगर, इस समय न तुम हमारे दोस्त न हम तुम्हारे दोस्त। इस समय तुम और बूढ़ी खाला दोनों हमारी निगाहमें बराबर हो। तुमको पञ्चोंसे जो कुछ अर्ज करना हो करो।"

जुम्मनको पूरा विश्वास था कि अब बाज़ी मेरी है। अलगू यह सब दिखानेकी बातें कर रहा है, अतएव शान्त-चित्त होकर बोले—

" पञ्चो, तीन साल हुए, खाला जानने अपनी जायदाद मेरे नाम हिबह कर दी थी। मैंने उन्हें हीन-हयात खाना कपड़ा देना कबूल किया था। खुदा गवाह है कि आज तक मैंने खाला-जानको कोई तकलीफ़ नहीं दी। मैं उन्हें अपनी माँ समझता हूँ। उनकी ख़िदमत करना मेरा फ़र्ज़ है। मगर औरतोंमें ज़रा अनबन रहती है। इसमें मेरा क्या बस है? खाला-जान मुझसे माहवार खर्च अलग माँगती हैं। ज़ायदाद जितनी है वह पंचोंसे छिपी नहीं है। उससे इतना मुनाफ़ा नहीं होता कि मैं माहवार खर्च दे सकूँ। इसके अलावा हिबहनामेमें माहवार ख़र्चका कोई ज़िक्र नहीं, नहीं तो मैं भूलकर भी इस झमेलेमें न पड़ता। बस, मुझे यही कहना है। आइन्दः पञ्चोंको अख़्तियार है, जो फ़ैसला चाहें करें।"

अलगू चौधरीका हमेशा कचहरीसे काम पड़ता था। अतएव वह पूरा कानूनी आदमी था। उसने जुम्मनसे ज़िरह करना शुरू किया। एक एक प्रश्न जुम्मनके हृदयपर हथौड़ेकी चोटकी तरह पड़ता था। रामधन मिश्र इन प्रश्नोंपर मुग्ध हुए जाते थे। जुम्मन चकित थे कि अलगूको क्या हो गया है! अभी यह मेरे साथ बैठा हुआ कैसी कैसी बातें कर रहा था! इतनी ही देरमें ऐसी कायापलट हो गई कि मेरी जड़ खोदनेपर तुला हुआ है! न मालूम, कबकी कसर यह निकाल रहा है। क्या इतने दिनोंकी दोस्ती कुछ भी काम न आवेगी?

जुम्मन शेख तो इसी सङ्कल्प-विकल्पमें पड़े हुए थे कि इतनेमें अलगूने फैसला सुनाया—

" जुम्मन शेख़, पञ्चोंने इस मामलेपर विचार किया। उन्हें

यह नीति-सङ्गत मालूम होता है कि खाला-जानको माहवार ख़र्च दिया जाय। हमारा विचार है कि ख़ालाकी जायदादसे इतना मुनाफ़ा अवश्य होता है कि माहवार ख़र्च दिया जा सके। बस, यही हमारा फैसला है। अगर जुम्मनको खर्च देना मंजूर न हो तो हिबहनामा रद्द समझा जाय।"

५

सुनते ही जुम्मन सन्नाटेमें आ गये। जो अपना मित्र हो वह शत्रुका व्यवहार करे और गलेपर छुरी फेरे, इसे समयके हेर-फेरके सिवा और क्या कहें? जिसपर पूरा भरोसा था उसने समय पड़नेपर धोखा दिया। ऐसे ही अवसरोंपर झूठे सच्चे मित्रोंकी परीक्षा हो जाती है। यही कलियुगकी दोस्ती है! अगर लोग ऐसे कपटी धोखेबाज़ न होते तो देशमें आपत्तियोंका क्यों प्रकोप होता? यह हैजा, प्लेग आदि व्याधियाँ इन्हीं दुष्कर्मोंके दण्ड हैं!

मगर रामधन मिश्र और अन्य पञ्च अलगू चौधरीकी इस नीति-परायणताकी प्रशंसा जी खोलकर कर रहे थे। वे कहते थे—इसीका नाम पञ्चायत है! दूधका दूध और पानीका पानी कर दिया! दोस्ती दोस्तीकी जगह है; मगर धर्मका पालन करना मुख्य है। ऐसे ही सत्यवादियोंके बल पृथ्वी ठहरी हुई है; नहीं तो वह कबकी रसातलको चली जाती।

इस फैसलेने अलगू और जुम्मनकी दोस्तीकी जड़ें हिला दीं। अब वे साथ साथ बातें करते नहीं दिखाई देते। इतना पुराना मित्रतारूपी वृक्ष सत्यका एक झोंका भी नहीं सह सका। सचमुच वह बालूहीकी जमीनपर खड़ा था।

उनमें अब शिष्टाचारका अधिक व्यवहार होने लगा। एक दूसरेकी आव-भगत ज़ियादह करने लगे। वे मिलते-जुलते थे, मगर उसी तरह जैसे तलवारसे ढाल मिलती है।

जुम्मनके चित्तमें मित्रकी कुटिलता आठों पहर खटका करती थी। उसे हर घड़ी यही चिन्ता रहती थी कि किसी तरह बदला लेनेका अवसर मिले।

६

अच्छे कामोंकी सिद्धिमें बड़ी देर लगती है, पर बुरे कामोंकी सिद्धिमें यह बात नहीं। जुम्मनको भी बदला लेनेका अवसर जल्द ही मिल गया। पिछले साल अलगू चौधरी बटेसरसे बैलोंकी एक बहुत अच्छी गोईं मोल लाये थे। बैल भी पछांईं जातिके सुन्दर बड़े बड़े सींगोंवाले थे। दैवयोगसे, जुम्मनकी पञ्चायतके एक महीने बाद, इस गोईंका एक बैल मर गया। जुम्मनने दोस्तोंमें कहा, "यह दग़ा-बाज़ीकी सज़ा है। इनसान सब्र भले ही कर जाय पर खुदा नेक-बद सब देखता है।" अलगूको सन्देह हुआ कि जुम्मनने बैलको विष दिला दिया है। चौधराइनने भी जुम्मनहीपर इस दुर्घटनाका दोषारोपण किया। उसने कहा, "जुम्मनने कुछ कर-करा दिया है।" चौधराइन और करीमनमें इस विषयपर एक दिन खूब ही वाद-विवाद हुआ। दोनों देवियोंने शब्द-बाहुल्यकी नदी बहा दी। व्यंग्य, वक्रोक्ति, अन्योक्ति, और उपमा आदि अलंकारोंमें बातें हुईं। जुम्मनने किसी तरह शान्ति स्थापित की। उसने अपनी पत्नीको डाँट-डपट कर समझा दिया। वे उसे उस रण-भूमिसे हटा भी ले

गये। उधर अलगू चौधरीने समझाने-बुझानेका काम अपने तर्कपूर्ण सोंटेसे लिया।

अब अकेला बैल किस कामका? जोड़ बहुत ढूँढ़ा गया, पर न मिला। निदान यह सलाह ठहरी कि इसे बेच डालना चाहिए। गाँवमें एक समझू साहु थे। वे इक्का-गाड़ी हाँकते थे। गाँवसे गुड़-घी लादकर वे मण्डीसे तेल-नमक भर लाते और गाँवमें बेचते। इस बैलपर उनका मन लहराया। उन्होंने सोचा, यह बैल हाथ लगे तो दिन-भरमें बे-खटके तीन-तीन खेपें हों। आजकल तो एक ही खेपके लाले पड़े रहते हैं। बैल देखा, गाड़ीमें दौड़ाया, बाल-भौंरीकी पहचान कराई, मोल तोल किया और उसे लाकर द्वारपर बाँध ही दिया। एक महीनेमें दाम चुकानेका वादा ठहरा। चौधरीको भी गरज थी ही, घाटेकी परवा न की।

समझू साहुने नया बैल पाया तो लगे रगेदने। वे तीन-तीन चार-चार खेपें करते थे। न चारेकी फिक्र थी न पानीकी। बस, खेपोंसे काम था। मण्डी ले गये, वहाँ कुछ सूखा भूसा सामने डाल दिया। बेचारा जानवर अभी दम भी न लेने पाया था कि फिर जोत दिया गया। अलगू चौधरीके घर थे तो चैनकी बंसी बजती थी। छठे छमासे कभी बहलीमें जोते जाते तब खूब उछलते कूदते और कोसोंतक दौड़ते चले जाते थे। वहाँ बैलराज रातिब, साफ़ पानी, दली हुई अरहर और भूसेके साथ खली खाते, और यही नहीं, कभी कभी घीका स्वाद भी चखनेको मिल जाता था। शाम-सबेरे एक आदमी खरहरे करता, पोंछता और सहलाता था। कहाँ वह सुख-चैन, कहाँ यह आठों पहरकी खपन! महीने-भरमें ही वह पिस-सा

गया। इक्केका धुआँ देखते ही उसका लोहू सूख जाता था। एक एक पग चलना दूभर था। हड्डियाँ निकल आई थीं पर था वह पानीदार, मारकी सहन न थी।

एक दिन चौथी खेपमें साहुजीने दूना बोझा लादा। दिन-भरका थका जानवर, पैर न उठते थे। उसपर साहुजी कोड़े फटकारने लगे। बस, फिर क्या था, बैल कलेजा तोड़कर चला। वह कुछ दूर दौड़ा और चाहा कि ज़रा दम ले लूँ; पर साहुजीको जल्द घर पहुँचनेकी फ़िक्र थी। अतएव उन्होंने कई कोड़े बड़ी निर्दयतासे फट-कारे। बैलने एक बार फिर जोर लगाया, पर अबकी बार शक्तिने जवाब दे दिया। वह धरतीपर गिर पड़ा और ऐसा गिरा कि फिर न उठा। साहुजीने बहुत पीटा; टाँग पकड़ कर खींचा, नथुनोंमें लकड़ी खोंस दी! पर कहीं मृतक भी उठ सकता है? तब साहुजीको कुछ शंका हुई। उन्होंने बैलको गौरसे देखा; खोलकर अलग किया और सोचने लगे कि गाड़ी कैसे घर पहुँचे। वे बहुत चीखे-चिल्लाये, पर देहातका रास्ता बच्चोंकी आँखकी तरह साँझ होते ही बन्द हो जाता है। कोई नजर न आया। आसपास कोई गाँव भी न था। मारे क्रोधके उन्होंने मरे हुए बैलपर और दुर्रे लगाये और कोसने लगे—अभागे! तुझे मरना ही था, तो घर पहुँचकर मरता। ससुरा बीच रास्तेमें ही मर रहा। अब गाड़ी कौन खींचे? इस तरह साहुजी खूब जले-भुने। कई बोरे गुड़ और कई पीपे घी उन्होंने बेचा था, दो ढाई सौ रुपये कमरमें बँधे थे। इसके सिवा गाड़ीपर कई बोरे नमकके थे। अतएव छोड़कर जा भी न सकते थे। लाचार बेचारे गाड़ीहीपर लेट गये। वहीं रत-जगा करनेकी ठान ली। चिलम पी, गाया, फिर हुक्का पिया। इस

तरह साहुजी आधी रात तक नींदको टहलाते रहे; अपनी जानमें तो वे जागते ही रहे पर पौ फटते ही जो चौंके और कमरपर हाथ रक्खा तो थैली गायब! घबराकर इधर-उधर देखा तो कई कनस्तर तेल भी नदारद! अफसोसमें बेचारेने सिर पीट लिया और पछाड़ खाने लगा। प्रातःकाल रोते-बिलखते घर पहुँचे। सहुआइनने जब यह बुरी सुनावनी सुनी तब पहले रोई, फिर बेचारे अलगू चौधरीको गालियाँ देने लगी,—निगोड़ेने ऐसा कुलच्छनी बैल दिया कि जन्म-भरकी कमाई लुट गई।

इस घटनाको हुए कई महीने बीत गये। अलगू जब अपने बैलके दाम माँगता तब साहु और सहुआइन दोनों ही झल्लाए हुए कुत्तोंकी तरह चढ़ बैठते और अण्ड-बण्ड बकने लगते—वाह! यहाँ तो सारे जन्मकी कमाई लुट-गई; सत्यानाश हो गया; इन्हें दामोंकी पड़ी है! मुर्दा बैल दिया था, उसपर दाम माँगने चले हैं! आँखमें धूल झोंक दी। सत्यानाशी बैल गले बाँध दिया। हमें निरा पोंगा ही समझ लिया। हम भी बनियेके बच्चे हैं। ऐसे बुद्धू कहीं और होंगे। पहले जाकर किसी गड्ढेमें मुँह धो आओ तब दाम लेना। न जी मानता हो तो हमारा बैल खोल ले जाओ। महीना-भरके बदले दो महीने जोत लो। और क्या लोगे?

चौधरीके अशुभचिन्तकोंकी कमी न थी। ऐसे अवसरोंपर वे भी एकत्र हो जाते और साहुजोंके बर्रानेकी पुष्टि करते। इस तरह फट-कारें सुनकर बेचारे चौधरी अपना-सा मुँह लेकर लौट आते। परन्तु, डेढ़ सौ रुपयोंसे इस तरह हाथ धो लेना आसान न था। एक बार वे भी गरम पड़े। साहुजी बिगड़कर लाठी ढूँढ़ने घरमें चले गये। अब

सहुआइनने मैदान लिया। प्रश्नोत्तर होते होते हाथा-पाईकी नौबत आ पहुँची। सहुआइनने घरमें घुसकर किवाड़ बन्द कर लिये। शोर-गुल सुनकर गाँवके भले मानुस जमा हो गये। उन्होंने दोनोंको समझाया। साहुजीको दिलासा देकर घरसे निकाला। वे परामर्श देने लगे कि इस तरह सिर-फुटौवलसे काम न चलेगा। पञ्चायत कर लो। जो कुछ तै हो जाय उसे स्वीकार कर लो। साहुजी राजी हो गये। अलगूने भी हामी भर ली।

७

पञ्चायतकी तैयारियाँ होने लगीं। दोनों पक्षोंने अपने दल बनाने शुरू किये। तीसरे दिन उसी वृक्षके नीचे फिर पञ्चायत बैठी। वही सन्ध्याका समय था। खेतोंमें कौवे पञ्चायत कर रहे थे। विवाद-ग्रस्त विषय यह था कि मटरकी फलियोंपर उनका कोई स्वत्व है या नहीं; और जब तक यह प्रश्न हल न हो जाय वे रखवालेकी पुकारपर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करना आवश्यक समझते थे। पेड़की डालियों-पर बैठी शुक-मण्डलीमें यह प्रश्न छिड़ा हुआ था कि मनुष्यको उन्हें कुटिल कहनेका क्या अधिकार है, जब उसे स्वयं अपने मित्रोंको दगा देनेमें भी सङ्कोच नहीं होता?

पञ्चायत बैठ गई तो रामधन मिश्रने कहा—

"अब देरी क्यों, पञ्चोंका चुनाव हो जाना चाहिए। बोलो चौधरी, किस किसको पञ्च बदते हो?"

अलगूने दीन-भावसे कहा, "समझू साहु ही चुन लें।"

समझू खड़े हुए और कड़ककर बोले, "मेरी ओरसे जुम्मन शेख़।"

जुम्मनका नाम सुनते ही अलगू चौधरीका कलेजा धक-धक

करने लग गया; मानो किसीने अचानक थप्पड़ मार दिया हो। रामधन अलगूके मित्र थे। वे बातको ताड़ गये। पूछा—क्यों चौधरी, तुम्हें कोई उज्र तो नहीं?

चौधरीने निराश होकर कहा, "नहीं, मुझे क्या उज्र होगा!"

*　　　　*　　　　*

अपने उत्तरदायित्वका ज्ञान बहुधा हमारे संकुचित व्यवहारोंका सुधारक होता है। जब हम राह भूलकर भटकने लगते हैं तब यही ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथ-दर्शक बन जाता है।

पत्र-सम्पादक अपनी शान्त-कुटीरमें बैठा हुआ कितनी धृष्टता और स्वतन्त्रताके साथ अपनी प्रबल लेखनीसे मंत्रि-मण्डलपर आक्रमण करता है! परन्तु, ऐसे अवसर भी आते हैं जब वह स्वयं मंत्रिमण्डलमें सम्मिलित होता है। मण्डलके भवनमें पग धरते ही उसकी लेखनी कितनी मर्मज्ञ, कितनी विचारशील, कितनी न्याय-परायण हो जाती है! इसका कारण उत्तरदायित्वका ज्ञान है।

नवयुवक युवावस्थामें कितना उद्दण्ड हो जाता है। माता-पिता उसकी ओरसे कितने चिन्तित रहते हैं! वे उसे कुल-कलंक समझते हैं। परन्तु, थोड़े ही समयमें परिवारका बोझ सिरपर पड़ते ही वही अव्यवस्थित-चित्त उन्मत्त युवक कितना धैर्यशील, कितना शान्त-चित्त हो जाता है! यह उत्तरदायित्वके ज्ञानका फल है।

जुम्मन शेखके मनमें भी, सरपंचका उच्च स्थान ग्रहण करते ही, अपनी जिम्मेदारीका भाव पैदा हुआ। उसने सोचा, मैं इस वक्त न्याय और धर्मके सर्वोच्च आसनपर बैठा हूँ। मेरे मुँहसे इस समय जो कुछ निकलेगा वह देव-वाणीके सदृश है। और देव-वाणीमें मेरे मनो-

विकारोंका कदापि समावेश न होना चाहिए। मुझे सत्यसे जौ भर भी टलना उचित नहीं।

पञ्चोंने दोनों पक्षोंसे सवाल-जवाब करना शुरू किया। बहुत देर तक दोनों दल अपने अपने पक्षका समर्थन करते रहे। पञ्चोंमें मत-भेद था। इस विषयमें तो सब सहमत थे कि समझूको बैलका मूल्य देना चाहिए; परन्तु दो महाशय इस कारण रियायत करना चाहते थे कि बैलके मर जानेसे समझूको हानि हुई। इसके प्रतिकूल, दो सभ्य मूल्यके अतिरिक्त समझूको कुछ दण्ड भी देना चाहते थे जिससे किसीको पशुओंके साथ ऐसी निर्दयता करनेका साहस न हो। अन्तमें जुम्मनने फैसला सुनाया——

"अलगू चौधरी और समझू साहु, पञ्चोंने तुम्हारे मुआमलेपर अच्छी तरह विचार किया। समझूको उचित है कि बैलका पूरा दाम दें। जिस वक्त उन्होंने बैल लिया, उसे कोई बीमारी न थी। अगर उसी समय दाम दे दिया जाता तो आज समझू उसे फेर लेनेका आग्रह न करते। बैलकी मृत्यु केवल इस कारण हुई कि उससे बड़ा कठिन परिश्रम कराया गया और उसके दाने-चारेका कोई अच्छा प्रबन्ध न किया गया।"

रामधन मिश्र बोले, "समझूने बैलको जान-बूझकर मारा है। अतएव उनसे दण्ड लेना चाहिए।"

जुम्मन बोले, "यह दूसरा सवाल है, हमको उससे कोई मतलब नहीं।"

झगड़ू साहुने कहा, "समझूके साथ कुछ रियायत होनी चाहिए।"

जुम्मन बोले, "यह अलगू चौधरीकी इच्छापर है। वे रियायत करें तो उनकी भलमनसी है।"

अलगू चौधरी फूले न समाये। उठ खड़े हुए और जोरसे बोले, "पञ्च-परमेश्वरकी जय!"

चारों ओरसे प्रतिध्वनि हुई, "पञ्च-परमेश्वरकी जय!"

प्रत्येक मनुष्य जुम्मनकी नीतिको सराहता था—इसे कहते हैं न्याय! यह मनुष्यका काम नहीं, पञ्चमें परमेश्वर वास करते हैं, यह उन्हींकी महिमा है। पञ्चके सामने खोटेको कौन खरा बना सकता है?

थोड़ी देर बाद जुम्मन अलगूके पास आये और उनके गले लिपटकर बोले, "भैया, जबसे तुमने मेरी पञ्चायत की है मैं तुम्हारा प्राण-घातक शत्रु बन गया था। पर आज मुझे ज्ञात हुआ कि पञ्चके पदपर बैठकर न कोई किसीका दोस्त होता है, न दुश्मन। न्यायके सिवा उसे और कुछ नहीं सूझता। आज मुझे विश्वास हो गया कि पञ्चकी जबानसे खुदा बोलता है।"

अलगू रोने लगे। इस पानीसे दोनोंके दिलोंका मैल धुल गया; मित्रताकी मुरझाई हुई लता फिर हरी हो गई।

प्रश्नावली

१ निम्नलिखित शब्दोंके अर्थ लिखो और उन्हें वाक्योंमें प्रयुक्त करो— सेवा-शुश्रूषा, तीखे सालन, दूभर, हवस, बेकस, हीन-हयात, आक्षेप, हिबहनामा, आव-भगत, व्यङ्ग, वक्रोक्ति, अन्योक्ति, रत-जगा, पोंगा, स्वत्व, अव्यवस्थित-चित्त।

२ यदि इसी कहानीको अलगू चौधरी कहता तो वह किस प्रकार कहता?

३ पञ्चायतपर निबंध लिखो।

आन्दोलन

जबसे सृष्टिकी रचना हुई है तभीसे मनुष्य-प्राणीने अपने धार्मिक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवनके लिए कुछ न कुछ आदर्श बना रक्खा है। इन्हीं आदर्शों तक पहुँचनेके लिए वह कुछ न कुछ प्रयत्न करता रहता है। इसके साथ ही पिछले अनुभव और भावी आवश्यकताओंके कारण उसका आदर्श भी सदैव बदलता रहता है। अखिल विश्वकी इस स्वाभाविक परिवर्तनपरम्पराके कारण यह आवश्यक हो गया है कि मानव-समाज सदा कुछ न कुछ काम सफलतापूर्वक करता रहे तो भी उसके लिए कुछ न कुछ काम सदा बाकी रह जाय। तात्पर्य यह है कि मनुष्य-जीवनमें हाथ पैर चलाते रहनेकी,—क्रिया-शीलताकी आवश्यकता मरण-पर्यंत बनी रहती है। मनुष्यकी इसी क्रियाशीलतामें आन्दोलनका अविनाशी बीज छिपा हुआ है। इस लेखमें हम आन्दोलनके तात्त्विक पहलुओंपर कुछ विचार प्रकट करनेका प्रयत्न करेंगे।

आन्दोलन एक प्रकारकी ज़बरदस्त लहर, संघर्ष-जनित ज्वाला अथवा जीवन-संग्रामका नाम है। हमारे आध्यात्मिक ग्रन्थोंमें कहा है कि सुख-दुःख, पाप-पुण्य, अमीर-गरीब, छोटा-बड़ा आदि परिवर्तन-जनित द्वन्द्व-भावका ही नाम संसार है। जिस दिन ये द्वन्द्व-भाव नष्ट हो जायँगे उस दिन प्राचीन आचार्योंके मतानुसार इस संसारका ही पता न रहेगा। अतएव आन्दोलन जीवित संसारका एक स्वाभाविक और अनिवार्य धर्म है। इस दृष्टिसे देखनेपर सहज ही मालूम हो सकता है कि गति-हीनता, स्थिरता और अकर्मण्यता आन्दोलनके

निस्सीम विरोधी गुणोंका नाम है, अर्थात् जब तक मनुष्यप्राणी जीवित रहेगा तब तक वह कुछ न कुछ क्रिया इच्छा रहने और न रहनेपर भी, करता रहेगा। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कर्मयोगका सिद्धान्त प्रतिपादन करते समय इसी तत्त्वका समर्थन किया है और आगे कहा है कि कर्म-त्यागकी इच्छा और सामर्थ्य रखनेवाले भी कर्मका सर्वथा त्याग नहीं कर सकते। इस विवेचनसे जब यह स्पष्ट है कि मनुष्य-प्राणी स्थिर, गति-हीन अथवा क्रिया-हीन रह ही नहीं सकता तब थोड़ा विचार करनेपर यह विदित हो जाता है कि या तो वह उन्नति करेगा या अवनति;—अपनी वर्तमान दशामें वह ज्योंका त्यों कदापि नहीं रह सकता।

स्वार्थ-साधन ही संसारके समस्त व्यक्तिगत और सार्वजनिक आन्दोलनों अथवा कार्योंका प्रथम कारण है। 'जर, जमीन और जोरू' ही स्वार्थके प्रधान अंग हैं। कौरव-पाण्डवोंका भयंकर युद्ध, राम-रावणका प्रबल संग्राम और विगत विश्वव्यापी योरोपीय महासागर इसी स्वार्थके कारण हुआ था। स्वार्थके दो स्वाभाविक विभाग हैं: मानवीय और दानवीय। मानवीय स्वार्थोंपर ध्यान देनेवाला मनुष्य राक्षस कहलाता है। मानवीय आन्दोलन लोक-कल्याण करते हैं और दानवीय आन्दोलनसे अनावश्यक प्रलयकी उत्पत्ति होती है। परंतु, संसारमें दोनों प्रकारके आन्दोलन होते आये हैं और होते रहेंगे। आन्दोलन ही संसार है, आन्दोलन ही जीवन है। पत्तेका हिलना, बच्चेका रोना, युवकोंका पठन-पाठन, अर्थार्थीका नौकरी करना, उद्योगीका व्यवसाय, कृषककी खेती, साधु-पुरुषका धर्म-प्रचार, योगीकी मोक्ष-पिपासा, परोपकारीकी दयाशीलता, वीरोंका

संग्राम, चुगलखोरकी निन्दा-वृत्ति, परस्परकी मुक़द्दमेबाजी, चोरकी चोरी, व्यभिचारीका उन्माद,—सभी भिन्न भिन्न कोटिके आन्दोलन हैं। इस तरहके करोड़ों,—नहीं नहीं, असंख्य आन्दोलन संसारमें प्रतिक्षण हो रहे हैं।

यह एक मानी हुई बात है कि बिना कारणके कोई कार्य नहीं होता। प्रत्येक कार्यके लिए किसी न किसी कारणकी आवश्यकता रहती है और पता लगानेपर यह मालूम भी हो जाता है। मनुष्य प्राणी उन्नति-शील है,—ईश्वरने उसे बुद्धि दी है; इसलिए वह अपनी अवनति होने देना पसन्द नहीं करता। दरिद्री सम्पत्तिशाली होना चाहता है, प्रभाव-हीन व्यक्ति या समुदाय सत्ता प्राप्त करना चाहता है, और कमजोर बलवान् बननेकी चिन्तामें है। जिसकी दशा बिगड़ी हुई है वह उसको सुधारना चाहता है; जिसकी दशा अच्छी है वह उससे भी अधिक अच्छी अवस्थामें जाना चाहता है। सारांश यह है कि स्वार्थ, आवश्यकता, असन्तोष, दुःख, कमी, उन्नति-पिपासा आदि ही आन्दोलनोंकी उत्पत्तिके कारण होते हैं।

आवश्यकताओंको पूरी कर लेना, दुःखोंको दूर कर लेना, असन्तोषको मिटा लेना और उचित अधिकारोंको प्राप्त कर लेना इस स्वार्थी और विचित्र संसारमें कोई सहज काम नहीं है। भूख लगनेपर बालक जब रोने लगता है तब कहीं माताको दूध पिलानेकी याद आती है। दुश्मनके हाथसे मार खानेपर जब किसीका सिर फूट जाता है तब भी उसे पहले अदालत तक जाना ही पड़ता है, तब कहीं उसे न्याय मिलता है। गाँठसे वाजिब पैसा देकर भी वसूलीके लिए साहूकारको ऋणीकी खुशामद करनी पड़ती है और

उसके पीछे मारा-मारा फिरना पड़ता है। आन्दोलनकी आवश्यकता प्रत्येक परिस्थितिमें है। जब किसी मनुष्य या समुदायके प्रयत्नसे दूसरे मनुष्य या समुदायके हित और स्वार्थमें कुछ अन्तर पड़नेकी सम्भावना रहती है, तब तो आन्दोलनकी आवश्यकता और भी बढ़ जाती है क्योंकि मनुष्य-स्वभाव ही ऐसा है कि वह अपने स्वार्थोंकी हानिको सहकर दूसरेका हित-साधन नहीं करना चाहता। उपर्युक्त बातोंसे हमें व्यक्तिगत आन्दोलनकी अनिवार्यता, स्वाभाविकता, उत्पत्ति-कारण और आवश्यकता मालूम हो गई। यही बातें सामूहिक और सार्वजनिक आन्दोलनोंपर भी घटित हैं।

आन्दोलन दो प्रकारके होते हैं : व्यवहारवादी और आदर्शवादी। व्यवहारवादी आन्दोलनमें मनुष्य उन कार्योंका साधन करना चाहता है जो उसके प्रतिदिनके जीवनमें नितान्त आवश्यक होते हैं। उनमेंसे मुख्य कार्य हैं,—रोटीके प्रश्नको हल करना, जान-मालकी सुरक्षाका प्रबन्ध करना, न्यायसंगत सीमाके भीतर स्वतंत्रता-पूर्वक विचार और विचरण कर सकना, उचित और सच बातोंको बोल और लिख सकना, अपनी सभ्यता, धार्मिक-भाव और आत्मसम्मानकी रक्षाके उपायोंको सदाके लिए सम्भव बना लेना। मनुष्य केवल रोटी पाकर ही सन्तुष्ट और जीवित नहीं रह सकता, वह अपने सद्विचार और सदाचरणकी मात्राके अनुसार बहुतसे अन्य कार्य भी करना चाहता है। इसीलिए नितान्त आवश्यक समझे जानेवाले उनके कार्योंकी सूची बहुत लम्बी हो जाती है। जब तक उसे इन कार्योंको सफलतापूर्वक करते रहनेकी स्वतन्त्रता और क्षेत्र नहीं मिल जाता तब तक वह अपनी शक्तिके अनुसार आन्दोलन और उपाय करता ही रहता है।

जब मनुष्यकी प्रारम्भिक आवश्यकताओंकी पूर्ति हो जाती है, भोजन-वस्त्रकी चिन्ता दूर हो जाती है, जान मालकी हिफाजतमें कोई संदेह नहीं रह जाता, तब भी वह खाली नहीं बैठ सकता। भौतिक इच्छाओंकी पूर्ति होनेपर उसके सिरमें आध्यात्मिक और अन्य प्रकारकी अनेक प्रबल महत्त्वाकांक्षायें चक्कर मारने लगती हैं। पेट भर जानेपर या तो उसे वेदान्त और दर्शन-शास्त्रकी बातें सूझने लगती हैं या वह नीचता और अत्याचार करनेमें ही सुख मानता है। इन्हीं कारणोंसे भिन्न भिन्न प्रकारके आदर्शवादी आन्दोलनोंका जन्म होता है। कोई साधु और योगी बनना चाहता है; कोई परोपकार, दया और न्यायका पालन कर अमर-कीर्ति छोड़ जाना चाहता है, कोई मोक्षकी चिन्तामें लगा रहता है; कोई अपने अनुभव और विचार रत्नोंको विश्वके उपदेशके लिए एकत्रित और सुरक्षित कर देना चाहता है। कोई भक्ति और ज्ञानके अपने सिद्धान्तोंका क्रियात्मक रूप प्रकट करता है; कोई अपने पड़ोसीकी सम्पत्ति और स्त्रीपर नजर डालता है।

दोनों प्रकारके आन्दोलनोंके दो और उपभेद होतें हैं : रचनात्मक और संहारात्मक। पहलसे अन्तरङ्गकी पुष्टि होती है और दूसरेसे बाहरी विकारोंका निवारण होता है। शरीरमें जब कोई रोग हो जाता है तो वैद्यको दो काम करने पड़ते हैं; एक तो बीमारीका विध्वंस करना और दूसरा उससे पैदा होनेवाली हानिकी पूर्ति करना। रचना और संहार अखिल सृष्टिके प्राकृतिक नियम हैं और वे प्रति-क्षण सर्वत्र अपना कार्य कर रहें हैं। संसारमें रोज़ हजारों मर रहे हैं और रोज़ हजारों पैदा हो रहे हैं। एक बन रहा है तो दूसरा बिगड़

रहा है; एक बिगड़ रहा है तो दूसरा बन रहा है। सृष्टि शक्तिको स्थायी और तुली हुई रखनेके लिए उचित सीमा तक रचना और संहार दोनोंकी आवश्यकता है।

आन्दोलनकी सफलता उसके जन्म-दाताकी सर्व-मान्यतापर अवलंबित रहती है, फिर वह जन्म-दाता एक व्यक्ति हो अथवा व्यक्तियोंका समूह हो। जन्म-दाताका यह कर्तव्य होता है कि वह इच्छित आन्दोलनके वास्तविक मूल कारणोंका ज्ञान प्राप्त करे, विकासके उपायोंका विचार कर ले और अपने उद्देश, नियम, सिद्धान्त, कार्यक्रम और आदर्शकी स्पष्ट घोषणा कर दे। सर्व-साधारणकी सहानुभूति प्राप्त करनेके लिए व्याख्यान, लेख और आचरणद्वारा मत प्रचार करनेकी बड़ी आवश्यकता रहती है। जब तक लोक-समूह आन्दोलनको उपादेय समझकर उसका पक्ष नहीं लेगा तब तक उसमें कोई शक्ति नहीं आ सकती। उसे सुसंगठित और सुचारु-रूपसे चलानेके लिए कार्यकारिणी समिति, शाखा-प्रशाखा, कोष, कार्यालय, वेश-भूषाका कोई बाहरी चिह्न आदिकी भी जरूरत होती है। सदस्योंमें जिस दर्जे तकका उत्साह, कर्तव्य-ज्ञान, उत्तरदायित्वकी ग्रहण-शक्ति, परिश्रमशीलता, आज्ञा-पालकता, और त्याग-शक्ति, रहेगी उस दर्जे तक आन्दोलनकी सफलता निश्चित है। संगठनकी उत्तमता और नीतिमत्ताकी उच्चता उसके प्राण हैं।

जो आन्दोलन अकारण किया जाता है, जिसकी नीतिमत्ताका मूल आधार द्वेष होता है, जिसका सूत्रधार पक्षपाती होता है या प्रलोभनोंमें फँस सकता है, जो दूसरोंकी अवनति कर अपने पक्षकी अनुचित उन्नति चाहता है, जिसका नायक नाजुक परिस्थितियोंके

सँभाल लेनेमें अयोग्य होता है अथवा जो नई परिस्थितियोंको अनुकूल नहीं बना सकता और जिसका उद्देश दूसरे व्यक्ति या समाजके उचित अधिकारोंका इच्छापूर्वक अपहरण करना होता है उस आन्दोलनका शीघ्र असफल होना निश्चित है। साध्यको ज्योंका त्यों रखकर साधनमें समयानुसार उचित परिवर्तन किये बिना काम नहीं चल सकता। जिस आन्दोलनकी दशा संसारके कल्याण और मानवीय जीवन-स्रोतके विरुद्ध रहेगी उसका पतन होना भी अनिवार्य है। जिस आन्दोलनके मूल-तत्त्व वैज्ञानिक और आध्यात्मिक विवेचनकी अग्नि-परीक्षामें न टिक सकेंगे उसको स्थायी स्वरूप मिलना असम्भव है। विचार, उच्चार और आचारकी एकताके अभावमें कोई भी आन्दोलन कभी कृतकार्य नहीं हो सकता।

प्रत्यक्ष और पूर्ण परिणाम प्राप्त कर लेना और अपने साध्यको कर-तल-गत कर लेना ही सफलताका सच्चा मार्ग नहीं है। संसारमें असफल सफलताके भी बहुत-से उदाहरण देखे जाते हैं। दार्शनिक ग्रन्थ-रत्न भगवद्गीताके सिद्धान्तोंके अनुसार मनुष्य प्राणीका अधिकार कर्म करनेमें है,—फल-प्राप्ति कर लेनेमें नहीं। मनुष्य सभी कामोंमें सम्पूर्ण अंश तक अपने भाग्यका विधाता हर्गिज नहीं है,—उसके भाग्य-निर्णयमें अन्य कई प्रत्यक्ष और परोक्ष शक्तियोंका भी प्रबल हाथ रहता है। हाँ, उत्तम प्रयत्न-शीलता, दुर्दमनीय उत्साह, भयंकर बाधाओंके आनेपर भी आशावाद, मानसिक प्रसन्नता तथा सन्तोष और ध्येयका निष्पाप होना पुरुषार्थी मनुष्यके गुण हैं। मनस्विता, स्वाभिमान, आत्म-सम्मान और कर्तव्य-परायणताकी बेदीपर अपने प्राणोंतकको न्योछावर कर देनेवाले क्या असफल कहे जा सकते हैं?

संकुचित दृष्टिवाले कुछ लोग आन्दोलन-रूपी अग्निको तभी तक जीवित समझते हैं जब तक उन्हें उससे उत्पन्न होनेवाला धुआँ और लपट दिखलाई पड़ती है। इन बाहरी लक्षणोंके दिखलाई न पड़नेपर वे समझने लगते हैं कि आन्दोलन ही बुझ गया। यह बड़ी भूल है। धुएँ और लपटके दूर होते ही क्या कभी आग भी बुझ जाती है?

मनुष्य त्रिगुणात्मक प्राणी है, अतएव उसके आन्दोलनोंका स्वभाव भी सात्त्विक, राजस और तामस होता है। साधु-प्रकृति और दैवी-संस्कारवाले जीव सात्त्विक आन्दोलन करते हैं, मनस्वी और स्वाभिमानी राजस आन्दोलन करते हैं और कपटी तथा नीच स्वभाववाले तामसी आन्दोलन करते हैं। आत्म-बलिदान और कायिक वाचिक तथा मानसिक अहिंसाके तत्त्व प्रथम कोटिके आन्दोलनमे पाये जाते हैं, निर्भीकता-पूर्ण वीरता और प्रकट नीतिकी कार्य-पद्धति दूसरी कोटिके आन्दोलनमें दिखाई पड़ती है तथा तीसरी कोटिमें खून-खराबी, गुप्त पाप और गुण्डेपनकी अधिकता रहती है। संसारकी रचनाको देखकर वही आन्दोलन उत्तम कहा जा सकता है जिसमें इन तीनों गुणोंका उचित मेल हो। किसी भी एक या दो गुणोंकी अधिकता अथवा न्यूनतासे उचित परिणामपर पहुँच सकना कठिन है। मनुष्यताके नाते विजयी होनेपर पराजित शत्रुको क्षमाकी दृष्टिसे देखना, सम्मानपूर्वक समझौता हो जानेपर परस्परके मनके मैलको धो डालना और अपमानित होनेपर असन्तोष प्रकट करना आवश्यक होता है।

प्रत्येक आन्दोलनकी तीन अवस्थायें होती हैं; प्रारंभिक, माध्यमिक

और अन्तिम। प्रारंभिक कालमें लोग अच्छेसे अच्छे आन्दोलनको अगण्य समझते हैं; उसकी हँसी उड़ाते हैं, घृणा करते हैं और उसकी सहायता करते समय उसपर अविश्वास रखते हैं। इस समय उसका कोई प्रभाव नहीं होता, उसे न तो सहायकोंकी सहानुभूति-का गर्व रहता है, न विरोधियोंकी प्रबलताका भय। यह पूर्व तैयारीका समय है। माध्यमिक कालमें जब कोई बड़ा आन्दोलन पदार्पण करता है तब उसमें अनेक विशेषतायें आ जाती हैं। उसका स्वरूप प्रबल हो जाता है। बहुत-से लोग उसकी सफलताके लिए कटिबद्ध हो जाते हैं और उसके लिए तन, मन, धन;— सबकी आहुति देनेको प्रस्तुत रहते हैं। इसी समय बहुत-से ऐसे लोग दिखाई पड़ने लगते हैं जिनके स्वार्थोंमें उस आन्दोलनके कारण भयंकर चोट पहुँचनेकी सम्भावना रहती है। अतएव वे तन-मन-धनसे उसकी असफलताके लिए प्रयत्न और उसका विरोध करने लगते हैं। प्रत्येक आन्दोलनकी किस्मतका फैसला इसी कालमें होता है। विरोधके सामने जो आन्दोलन सिर झुका देता है उसकी समाधि इस दूसरी अवस्थामें ही बन जाती है और जो उससे पार पा सकता है वह तीसरी विजयकी अवस्थाका दर्शन करता है।

माध्यमिक काल आन्दोलनकी शक्ति, भीतरी सचाई, नीतिमत्ता आदिकी कड़ी परीक्षाका समय होता है। इस समय उसमें शिथिलता भी आ सकती है और प्रचण्डता भी। शिथिलता आनेके कारण होते हैं घरू झगड़े, उच्छृंखलता, मदान्धता, अकर्मण्यता, सैद्धान्तिक मत-भेद नैतिक शक्तिका ह्रास इत्यादि। यह संग्रामका समय होता है। अत-एव आन्दोलन-कारियोंकी संख्या चाहे जितनी बड़ी हो उन्हें इस

तरहसे काम करनेकी आवश्यकता रहती है जैसे कि कोई एक व्यक्ति काम कर रहा हो,—अपना अपना राग अलापनेसे केन्द्रस्थ शक्ति बँटकर क्षीण हो जाती है। जिस महान् आन्दोलनकी भीतरी शक्तिका उद्गमस्थान व्यक्तिविशेष होते हैं वह ऐसे समयमें नीचा देखने लगता है। इस समय व्यक्ति-पूजाका सिद्धान्त नहीं,—वीर-पूजाका सिद्धान्त उस आन्दोलनको जिन्दा रख सकता है; व्यक्ति मर सकता है, परन्तु त्रिकाल-सत्य सिद्धान्त सदा जीवित रहते हैं। किसी क्षणिक नूतन विपत्ति अथवा क्षणिक नूतन विजयके समय साध्य और साधनोंका पुनर्निरीक्षण उत्तमतासे करना कठिन परन्तु आवश्यक कार्य है।

यदि आन्दोलनके आधारभूत कारण सच्चे होते हैं और योग्यता-पूर्वक संचालित होनेके कारण यदि शिथिलता तथा निराशाकी वृद्धि होने ही नहीं पाती तो उसमें प्रचण्डता आने लगती है। फलतः प्रतिपक्षियोंका विरोध प्रबल होने लगता है और अनेक रूपोंमें प्रकट होकर वह उस आन्दोलनको नष्ट करने लगता है। विरोधी शक्तियोंमें जिस अंशतक नीचता और अत्याचारकी मात्रा हो उस अंशतक आन्दोलनको नया और ईश्वरीय बल मिलता है। ऐसे समयमें एक ओर जहाँ अज्ञानजनित आवेश तथा शब्दाडम्बरकी ओटमें काम करनेवाले अनुयायियोंकी पोल खुलती है वहाँ दूसरी ओर अत्यन्त तटस्थ लोगोंका भी ध्यान आकर्षित होने लगता है। यह विचार-क्रान्तिका समय होता है। संसारको शिक्षा, इतिहास और अनुभवकी मूल्यवान् सामग्री यही समय देता है। इस समयकी घटना-परम्पराको देख कर विद्वान् लोग उसके भविष्यका बहुत कुछ ठीक अनुमान तुरन्त कर

सकते हैं। यह आन्दोलनकारियोंकी त्याग-शक्ति और संकट-सहिष्णुताकी परीक्षाका समय है। तन, मन और धनका मोह जितना रहेगा आन्दोलन उतना ही कम सफल होगा। क्षणिक पराभवके समय अत्यधिक निराश हो जाना उतना ही घातक होता है जितना क्षणिक विजयके समयकी मदान्धता; दोनों परिस्थितियोंमें सुविचार और शान्त मस्तिष्ककी बड़ी आमश्यकता रहती है। इस बातका कोई नियम नहीं कि सच्चे कारणों, अच्छे सिद्धान्तों और श्रेष्ठ कार्यपद्धतिवाला प्रत्येक आन्दोलन तुरन्त सफल ही हो जाय। इसके लिए बलाबलकी तुलना और परमात्माकी अनुकूलताकी आवश्यकता रहती है। आन्दोलनका पक्ष यदि अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग सभी दृष्टियोंसे श्रेष्ठ होगा तो उसकी सफलता निश्चय ही है,—फिर उसका विरोधी चाहे स्वयं परमात्मा भी क्यों न हो। इसका प्रमाण भारतीय इतिहासका 'कृष्णार्जुन-युद्ध है' जिसमें स्वयं परमात्मा श्रीकृष्णको हार माननी पड़ी थी।

बहुत-से ऐसे मनुष्य भी होते हैं कि जिनके मनपर किसी बड़े आन्दोलनके प्रति न तो प्रेम ही उत्पन्न होता है न घृणा। इस तटस्थ समुदायके लोग कई प्रकारके स्वभाव और विचारवाले होते हैं। इनमेंसे कुछकी तटस्थताका कारण व्यक्तिगत स्वार्थ, कुछका अज्ञान, कुछका भय, कुछका आन्दोलनके प्रति अविश्वास और कुछका सचमुच असमर्थ होना होता है। आन्दोलनको जितना भय शत्रुओंसे होता है उससे अधिक भय घरके बिभीषणों और कपट-वेषधारी मित्रोंसे होता है। जिनका किसी आन्दोलनमें आन्तरिक विश्वास न हो, जो किसी निजी परिस्थितिके कारण उसमें भाग लेनेमें स्वेच्छा

अथवा लाचारीसे असमर्थ हों, और जिन्हें उसके आदि-अन्तकी उलझनें न सूझ सकती हों, उनके लिए उस आन्दोलनसे सज्जनतापूर्वक अलग रहना ही सर्वथा उचित है। नादान दोस्तसे जिस तरह दाना दुश्मन कई दर्जे अच्छा होता है, उसी तरह दंभी हितैषीकी अपेक्षा निष्पक्ष तमाशबीन भी कई गुना बढ़कर है। अज्ञान-जनित आवेश, अनुताप-जनक प्रेरणा और किरायेके बहादुरोंसे गाढ़े समयपर बड़ा धोखा खाना पड़ता है।

आन्दोलनमें अवश्य ही बड़ा भारी बल होता है। समुद्रमें कंकड़-पत्थरके टुकड़े डालनेसे लहर पैदा हुए बिना न रहेगी। बड़ी चट्टानको फेंकनेसे बड़ी और देर तक ठहरनेवाली लहर दिखाई देगी। अग्निमे जितनी अधिक आहुति पड़ती या डाली जाती है उतने ही अधिक परिमाण और समय तक उसकी ज्वाला दिखाई पड़ती है। यह पहले कहा जा चुका है कि आन्दोलनका भीतरी और यथार्थ बल उसके मूल कारणों और साधनोंका औचित्य ही है। जिस व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिगत अथवा धार्मिक आन्दोलनके साथ ईश्वर नहीं रहता, जिसमें आध्यात्मिकताके तत्त्वोंका किसी विशेष सीमातक समावेश नहीं रहता, उसकी स्थायी सफलता असम्भव है। आन्दोलनमें महान् शक्ति है तो अवश्य, परन्तु कब? जब उसमें जगन्नियन्ताका,—विश्वके अचल नियमोंका भी सहयोग हो तब। समर्थ रामदासस्वामी भी इस सिद्धान्तका समर्थन करते हैं। वे कहते हैं—

“जो कोई आन्दोलन करेगा उसमें शक्ति है; परन्तु उसमें ईश्वरका अधिष्ठान होना चाहिए।”

अब विचार करनेके लिए एक ही मुख्य प्रश्न रह गया है। वह है आन्दोलन करे कौन ? उत्तर सरल है। जिसको गरज़ होती है वही आन्दोलन करता है। जिसका काम होता है वही उसे करता भी है। अपने मरे बिना स्वर्ग दिखलाई नहीं पड़ता। Knock, and ye shall get, जो ढूँढ़ेगा उसे हीरा भी मिल सकता है; और जो घर बैठा रहेगा उसे काँचका टुकड़ा भी नहीं मिल सकता। जिसको भूख लगती है वह बिना कहे-सुने धन कमानेमें लग जाता है। जिसको अच्छा थप्पड़ लगता है वह आप ही चीख़ उठता है। रोगीके लिए दवा उसके मित्र अथवा माता-पिता नहीं खाते। पाण्डवोंको मख़मली शय्यामें सुलाकर महाभारतका युद्ध करने अकेले श्रीकृष्ण नहीं गये थे,—यद्यपि वे समूचे कौरव-दलके लिए बल थे;—अर्जुनको पहले सम्मुख होना पड़ा था। जो अपनी मदद आप नहीं कर सकता उसकी मदद ईश्वर भी नहीं करता। जो अपने कामोंके लिए हाथ पैर हिलाता है उसे ईश्वरकी भी सहायता मिलती है।

प्रश्नावली

१ निम्नलिखित शब्दोंके अर्थ लिखो और उन्हें वाक्योंमें प्रयुक्त करो—
अखिल, परम्परा, तात्त्विक, संघर्षणजनित, अकर्मण्यता, प्रतिपादन, गति-हीन, पिपासा, सामूहिक, त्रिगुणात्मक, सैद्धान्तिक, निर्भीकता-माध्यमिक, केन्द्रस्थ, बहिरंग, तटस्थ, आवेश, अधिष्ठान।

२ आन्दोलनके मुख्य मार्ग क्या हैं ?

३ किसी आन्दोलनकी सफलताके लिए कौन-कौन-सी बातें अनिवार्य हैं ?

४ भारतवर्षके किसी वर्तमान आन्दोलनपर निबंध लिखो।

हिन्दू धर्म क्या है ?

किसी चीज़की परिभाषा देना कठिन नहीं, असम्भवप्राय है। परिभाषा करते हुए बड़े बड़े विद्वान् भी गड़बड़ा जाते हैं। प्राचीन यूनानके महान् दार्शनिक और शिक्षक अरस्तूने जब मनुष्यकी यह परिभाषा की कि वह 'बिना परका दो पैरका जन्तु' है, तब उसके किसी तबीयतदार और मनचले विद्यार्थीने एक मुर्गके सब पर नोंचकर और उसपर यह लिखकर कि 'यह अरस्तूका मनुष्य है,' उनकी मेजपर रख दिया। तबसे संसारके सभी विद्वान् परिभाषा करनेसे घबराते हैं और वस्तु विशेषका वर्णन-मात्र करके अपनेको संतुष्ट कर लेते हैं। यूकिलडकी प्रसिद्ध परिभाषायें भी वर्णनीय हैं। कुछ लोग अपने प्राण बचानेके लिए निषेधात्मक परिभाषा देते हैं। जिस प्रकार 'ब्रह्म' की परिभाषा 'नेति नेति' से दी गई है। ऐसी अवस्थामे मेरे ऐसे अल्प-बुद्धि व्यक्तिके लिए हिन्दू-धर्म ऐसे विशाल और जटिल विषयकी परिभाषा देनेका यत्न करना दुःसाहस होगा। और लोगोंकी दिखलाई परम्पराके अनुसार निषेधात्मक शब्दों और उसके वर्णनसे ही मैं भी अपना संतोष कर लूँगा।

हिन्दू-धर्म उस अर्थमें धर्म नहीं है जिस अर्थमें साधारण प्रकारसे 'धर्म' समझा जाता है। वह 'मज़हब' या 'रिलीजन' नहीं है। उसके अंतर्गत बहुत-से सम्प्रदाय हैं जो 'मज़हब' शायद कहे जा सकते हैं, पर, उस आचार-विचारको 'मज़हब' नहीं कह सकते जिसका व्यापक संकेत 'हिन्दूधर्म' से होता है। हमारे यहाँ 'धर्म' शब्दका बहुत-से अर्थोंमें प्रयोग होता है। कर्तव्य, नित्यकर्म, लोकाचार,

सद्व्यवहार; रीति-रस्म, सभी 'धर्म' कहे जाते हैं। जब 'हिन्दू-धर्म' की चर्चा होती है तब सबके मनमें प्रधान रूपसे भी एक ही प्रकारके भाव उसके संबंधमें नहीं होते। गौण रूपसे तो सभीमें अन्तर है, पर हमारे धर्मकी विशेषता यह है कि मुख्य बातोंमें भी समानता नहीं है। जब बौद्ध-धर्म, ईसाई-धर्म अथवा इस्लाम-धर्मका नाम लिया जाता है तब सबके मनमें कुछ खास खास विचार एकाएक उठ आते हैं। विवेचना करनेपर चाहे अन्तर प्रतीत हो, पर प्रधान बातोंमें विचार-भेद नहीं होता। लेकिन शायद ही दो हिन्दू ऐसे मिलें (जब तक कि दोनों उसके अन्तर्गत सम्प्रदाय-विशेषके सदस्य न हों) जिनके इसके संबंधमें एक ही विचार हों। 'हिन्दू' तो उनके लिए एक साधारण विशेषण है जिसका कोई खास महत्त्व नहीं है, न जिसका कोई प्रभाव ही उनके प्रतिदिनके जीवनपर पड़ता है।

किसी धर्मके ('रिलीजन' या 'मज़हब' के अर्थमें) तीन प्रधान अंग होते हैं। पहलेमें हमें बतलाया जाता है कि संसारकी सृष्टि कैसे हुई। ('संसार' का अर्थ उस सबसे है जिसका अनुभव हम अपनी इन्द्रियोंसे कर रहे हैं।) दूसरा अंग कर्मकाण्डका होता है जिसमें धर्म-विशेषके अनुयायियोंको यह बतलाया जाता है कि किन प्रकारोंसे जीवनके भिन्न भिन्न अवसरोंपर विशेष विशेष कार्य करना चाहिए। गर्भाधानसे मृत्यु तक जो विशेष विशेष घटनायें होती हैं उनके नियमन, नियंत्रण, प्रदर्शन आदिके रूप इसमें बतलाये जाते हैं। सब मज़हबोंका यही बाह्य रूप होता है और प्रायः सबमें इसीपर अधिक जोर भी दिया जाता है

तथा इसीमें परस्परका प्रधान अन्तर भी पाया जाता है। इसीके कारण आन्तरिक एकता अर्थात् प्रेम और बाह्य अनेकता अर्थात् विद्रोह, पैदा होता है। तीसरा अंग नैतिक आदेशोंका होता है जिसमें यह बतलाया जाता है कि व्यक्ति-विशेषका अन्य व्यक्तियों और समष्टिके प्रति क्या कर्तव्य है। मनुष्यके कठोर जीवनको सुचारु रूपसे संगठित करनेका और परस्पर सद्व्यवहार स्थापित कर समाजसे मनोमालिन्य और अन्य प्रकारकी कठिनाइयोंको हटानेका प्रयत्न इनके द्वारा किया जाता है।

इस सबका उद्देश्य यह है कि मनुष्य अपने शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवनको इस प्रकार व्यतीत करे कि उसे और उसके द्वारा दूसरोंको सुख मिले; और उचित मार्गसे चलनेपर सुखकी आशा और अनाचार करनेपर दुःखका भय देकर सबको एक निर्दिष्ट मार्गपर रक्खा जाय जिससे अभीष्ट प्रकारसे संसार चला जाय। उदाहरणके लिए ईसाके मज़हबको लीजिए। उसकी एक धर्म-पुस्तक है। वह ईसाइयोंके लिए सर्वमान्य है। पहले तो वह यह बतलाती है कि संसारकी उत्पत्ति कैसे हुई; वह ईश्वर, आदम, हौआ, शैतान आदिका वर्णन करती है और फिर यह बतलाती है कि ईसाईके क्या क्या संस्कार हैं जिनसे कोई व्यक्ति ईसाई कहा जा सकता है। इसमें बपतिस्मा, विवाह-पद्धति, प्रार्थनाके प्रकार, मृत्युके समयके कृत्य आदि बतलाये हैं। साथ ही इसमें दया, दान, माता-पिताकी भक्ति, अतिथियोंका सत्कार, सदाचार आदिका आदेश है।

इसी प्रकार सभी मजहबोंका विभाग कर उनकी परीक्षा की जा सकती है। हिन्दू-धर्मके अन्तर्गत भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंमें भी ये

विभाग देखे जा सकते हैं। नानकपंथ, कबीरपंथ, रामानुज, वल्लभ, राधास्वामी आदि सम्प्रदायोंकी यदि विवेचना की जाय तो मालूम होगा कि उनके विश्वासोंके आधार भी ये भाव हैं; और ये भी सृष्टिकी रचनाका कारण, अपने विशेष सम्प्रदायका बाह्य रूप और सदाचारके प्रकार बतलाते हैं।

अब हिन्दू-धर्म क्या है? पहले तो 'हिन्दू' शब्दसे ही यह प्रतीत होता है कि यह न किसी विशिष्ट पुरुषका सूचक है जिसने इस धर्मका प्रवर्तन किया हो, न उसके पास कोई ऐसा ग्रन्थ ही है जिसे वह पूछनेवालेको देकर अपने संबंधका ज्ञान प्रदान कर सके। 'हिन्दू' तो 'हिन्द' के रहनेवाले,—सिन्धु नदी पारके बसे हुए लोग हैं, न कि किसी विचार-विशेषके अनुयायी। आज भी अमरीकामें भारतीय,—चाहे वे मुसलमान या ईसाई ही क्यों न हों, 'हिन्दू' कहे जाते हैं। 'हिन्दू' शब्द भी नया शब्द है। उस व्यवस्थाको जिसे मोटे तौरसे 'हिन्दू' कहते हैं पुराने ग्रन्थोंमें—उनकी प्रमाण-पुस्तकोंमें, 'मानव धर्म' या 'सनातन धर्म' या 'वर्णाश्रम धर्म' कहा है। 'मानव धर्म'से यह मालूम पड़ता है कि जो लोग इसके प्रवर्तक रहे हों वे इसे मनुष्य-मात्रका धर्म बतला रहे हैं। यों तो कहा जा सकता है कि सभी मज़हब सारे मनुष्य समाजको अपनाना चाहते हैं, पर हिन्दू-धर्मकी यह विशेषता है कि उसने बिना किसी संस्कार विशेषके,—बिना बपतिस्मा या सुन्नतके सबको अपना लिया और सबके लिए व्यवस्था कर डाली है। 'सनातन धर्म' इस बातका सूचक है कि इसके संस्थापकोंके अनुसार यह धर्म अनादि-अनन्त है। यह मनुष्योंके आन्तरिक स्वभाव, प्रकृति और प्रवृत्तिपर स्थापित है जो साधारणतः सबके लिए सदा अपरिवर्तनीय ही समझी जा सकती है।

'वर्णाश्रम धर्म' यह दर्शाता है कि इस धर्ममें वर्ण और आश्रमकी व्यवस्था कर सामाजिक और व्यक्तिगत जीवनका संगठन किया गया है। इन्हीं शब्दोंपर ही ध्यान रखनेसे हम इसे समझ सकेंगे।

हिन्दू-धर्म कोई मज़हब नहीं है, वह किसी व्यक्तिविशेष या देवता विशेषका उपासक नहीं है। वह किसी विशेष विचारका प्रचारक या किसी विशेष परलोक-मार्गका प्रवर्तक नहीं है। वह वास्तवमें सारे मनुष्य-समाजके सुदृढ़ संघटनका एक प्रकार है और उसका आधार दो आध्यात्मिक विश्वासोंपर कर्म और पुनर्जन्मपर है। यदि ये दो विश्वास न हों तो जो समाज-संघटन हिन्दू-धर्म चाहता है, वह कदापि नहीं हो सकता। चाहे कितने ही सम्प्रदाय हमारे बीचमें क्यों न हों जहाँतक मैं जानता हूँ, किसी भी सम्प्रदायके किसी भी अनुयायीको इन दो बातोंमें शंका नहीं होती। सब हिन्दू यह मानते हैं कि हम जो कुछ हैं अपने कर्मके कारण हैं, और जैसा कर्म हम करेंगे उसीके अनुसार हम आगेके जन्ममें होंगे। इन दो विश्वासोंको दृढ़ करके समाजका संघटन करनेका विशाल प्रयत्न हिन्दू-धर्मने किया है। थोड़ेमें, हिन्दू-धर्म स्वयं ही एक समाज-संघटन है जिसमें कर्म और पुनर्जन्मके विश्वासके आधारपर प्रत्येक व्यक्तिका जन्मसे ही समाजमें पद और कार्य निर्दिष्ट कर दिया गया है। कोई भी पद छोटा-बड़ा नहीं है। सभी अपने अपने स्थानपर सम्मानके योग्य हैं, सभी सबकी सहायता करते हैं, समाजरूपी विराट् पुरुषके जरूरी अंग हैं। जब सब सबकी सहायता और पुष्टि करेंगे तभी व्यक्ति-समष्टि दोनोंका ही लाभ हो सकता है।

संसारमें मनुष्य हैं, और सभी मनुष्य सुख चाहते है। सुखके लिए व्यक्ति-गत और समाज-गत संघटनकी आवश्यकता है। मनुष्य

होनेसे ही उसके ऊपर 'मानव-धर्म' लागू हो जाता है। उसकी सुखकी अभिलाषा सनातन होनेके कारण उसपर 'सनातन-धर्म' लागू हो जाता है। बिना समुचित संघटन किये मनुष्यके लिए सुख सम्भव नहीं है, अतएव उसपर 'वर्णाश्रम-धर्म' लागू हो जाता है। संसारमें मनुष्य पैदा हुआ; माता-पिताने उसका भरण-पोषण किया,—उसको अपने पैरों खड़ा होनेके योग्य बनाया। अब उसको संसारमें किसी कार्यमें लगना ज़रूरी है। क्या कार्य करे? बहुत दौड़-धूप करने, नाक रगड़ने, ठोकर खानेकी क्या आवश्यकता है? आखिर उसके पिताका भी तो कोई काम रहा है। सभी काम संसारके लिए आवश्यक हैं। कोई काम खराब नहीं है,—काम करनेवाला ख़राब हो सकता है। जाति जातिका काम बँटा हुआ है। हर-एक आदमीके लिए पैदाइशसेके ही काम तयार है। उसी कामको वह उठा ले। उसे ठीक तरह करे। उसीमें अपना और सबका भला समझे।

पर व्यक्ति कहता है कि यह काम मेरे योग्य नहीं है। मैं इससे बहुत अच्छे कामके योग्य हूँ। मुझे उसका मौका मिले। तब समाज कहता है—जैसा तुम्हारा कर्म था उसीके अनुरूप तुम्हारी जाति है और उसीके अनुकूल तुम्हारा काम है। एक व्यक्तिकी अहंमन्यताके कारण समाजकी दुर्व्यवस्था नहीं होने दी जा सकती। तुमको यही काम करना होगा। यदि इसे अच्छी तरह करोगे,—यदि कर्तव्य-परायण होगे, तो तुम्हे ऊँची जाति और ऊँचा काम किसी आगेके जन्ममें दिया जायगा। अपनी महत्वाकांक्षाको थोड़ा दबाये रहो। सब कुछ समयपर होगा। यदि कर्म और पुनर्जन्ममें विश्वास न हो तो कदापि यह संभव नहीं है कि व्यक्तिको इस प्रकार आश्वासन दिया जा सके। वर्णकी व्यवस्था जन्मसे ही प्रत्येकके लिए उपयुक्त

पदको प्राप्त कर सकनेकी व्यवस्था है। वर्णयुक्त समाजमें व्यक्ति अपनी जाती-विशेषकी भर्त्सना और प्रशंसाकी ही फ़िक्र करता है। दूसरी जातिके लोग उसे क्या समझते हैं, इसकी उसे चिन्ता नहीं रहती। इसीसे वह काम ठीक तरह कर सकता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रकी वर्ण-व्यवस्था इन्हीं भावों और उद्देश्योंकी सूचक है।

प्रत्येक व्यक्तिके लिए,—चाहे वह किसी जातिका क्यों न हो, चाहे वह कोई भी काम क्यों न करता हो, एक निश्चित रूपसे रहना आवश्यक है। अपने जीवनके प्रथम भागसे उसने संसारके कार्यके योग्य अपने जीवनके लिए समुचित शिक्षा प्राप्त की,—चाहे शिक्षा पाठशालाकी हो या व्यावहारिक खेत और कल कारखानेकी हो। दूसरे भागमें उसने शिक्षाको काममें लाकर उसके द्वारा अपना और अपने घरवालोंका भरण-पोषण किया और साथ ही समाजके आवश्यक अंगकी पुष्टि कर उसकी सेवा की। उसके लिए यह उचित है कि एक खास आयु तक पहुँचकर वह अपना काम, स्वयं अलग होकर, दूसरोंके सुपुर्द कर दे। उसके लिए यही अच्छा है, चाहे वह सांसारिक दृष्टिसे कितना ही सफल प्रयत्न क्यों न कर रहा हो। उसे विश्राम मिलता है और दूसरे उससे बुरा नहीं मानते,—यह नहीं चाहते कि वह मरे जिससे हमें भी आगे बढ़नेका मौका मिले। यह सबको जान लेना चाहिए कि संसारमें कोई भी ऐसा नहीं है कि उसके बिना संसारका काम ही नहीं चल सकता हो। बड़ेसे बड़े लोग आये और चले गये। संसार चला जाता है। ऐसा विचार कर समयपर अपने कामसे अलग होना अपने लिए और दूसरोंके लिए भी कल्याणकारी है। विश्रामकी अवस्थामें अपने अनुभवसे वह दूसरोंकी सेवा बिना कुछ किये कर सकता है। जब

इसके भी योग्य वह न रह जाय और प्राण शरीर न छोड़ें तब वह तपस्या कर आगेके लोकके लिए, बिना इस लोकपर बोझ हुए तैयारी कर सकता है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासकी आश्रम-व्यवस्था इन्हीं भावों और उद्देश्योंकी सूचक है।

हिन्दू-धर्मने आश्रमकी व्यवस्था कर व्यक्तियोंको वैसे ही शान्ति देनेका यत्न किया है जैसे कि वर्णकी व्यवस्था कर समाजको शान्ति देनेका यत्न किया। उसने हमारे सामाजिक और व्यक्ति-गत जीवनसे उस भयंकर चढ़ा-ऊपरीको हटाना चाहा है जिसने आज हमारे सामने ऐसी घोर समस्यायें उपस्थित कर दी हैं कि हम लोग त्रस्त और किंकर्तव्यमूढ़ हो रहे हैं। आधुनिक समाजने व्यर्थ ही कुछ कामोंको छोटा या नीच मान लिया है, कुछको बड़ा और गौरवयुक्त। सब ही लोग इन बड़े कामोंके लिए दौड़ते हैं। सब उसे पा नहीं सकते, निराश होते हैं। जो काम कर सकते हैं सो भी नहीं करते, इससे उनका ह्रास होता है। इसीसे आज भयंकर दुर्वस्था फैली हुई है।

प्रश्नावली

१ निम्नलिखित शब्दोंके अर्थ लिखो और उन्हें वाक्यमें प्रयुक्त करो—निषेधात्मक, अन्तर्गत, आचार-विचार, व्यापक, संकेत, सम्प्रदाय, गौण, रूप, संस्कार, नियमन, नियन्त्रण, समष्टि, निर्दिष्ट, अभीष्ट, व्यवस्था, आश्वासन, किंकर्तव्यविमूढ़, समस्या।

२ धर्म किसे कहते हैं और उसके कितने अंग हैं?

३ हिन्दूधर्म और अन्य धर्मोंमे क्या भेद है? हिन्दूधर्मकी क्या विशेषतायें हैं?

४ वर्णाश्रमकी व्यवस्थासे क्या लाभ है?

अबसे सौ बरस बाद

वर्तमान युगके वैज्ञानिक आविष्कारोंने पृथिवीका आकार बहुत छोटा कर दिया है। एशिया, योरप, आफ्रिका और अमेरिका,—चारों महाद्वीप सिकुड़कर बहुत छोटे हो गये हैं, और पृथिवी मानों एक गेंदकी तरह उछाली जानेवाली है। इस चौगानमें सबको शरीक होना पड़ेगा। अब पृथक्ताका युग बड़े वेगसे बीत रहा है; अपनी अपनी डेढ़ ईंटकी मसजिद बनानेका ज़माना नहीं रहा। अब कोई संप्रदाय अपनी डेढ़ चावलकी खिचड़ी नहीं पका सकता। संसार एक हो चुका है, और यह एकता और समता दिन दिन अधिक प्रगाढ़ और व्यापक होती जाती है।

इस समय संसारमें प्रत्येक देशमें कुछ सचेत और सुबोध सज्जन पैदा हो गये हैं जिनकी आत्मा पुराने विचारों, स्वार्थों और संकीर्णताओंसे मुक्त हो चुकी है। ये लोग किसी विशेष मत, जाति और देशके प्रभुत्व और साम्राज्यका स्वप्न नहीं देख रहे हैं। ये एक उदार और व्यापक 'मनुष्यता-वाद' को संसारमें स्थापित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। संकीर्ण जातीयता, राष्ट्रीयता और धर्मसे मनुष्य-जातिको मुक्त करना ही इन जाग्रत आत्माओंकी शुभ भावना है। अस्तु। इस लेखमें यही दिखानेकी चेष्टा की जायगी कि इस वैज्ञानिक युगमें इन व्यक्तियोंका प्रभाव किस तरह बढ़ता चला जाता है और आजसे सौ बरस बाद संसारका क्या रूप होगा।

विज्ञानका लक्ष्य शारीरिक सुख और सुगमता प्रदान करना है। विज्ञानके साथ साथ 'मनुष्यता-वाद' (=ह्यूमनिज्म) की नैतिक प्रेरणा

काम कर रही है जो इस सुख और सुगमताको प्रत्येक प्राणीका जन्म-सिद्ध अधिकार बनाना चाहती है। इसके लिए ज़रूरी है कि संसारके वे देश और जातियाँ जिनपर दूसरे देशों या जातियोंका राज्य या दबाव है, गुलामी या दबावसे मुक्त हो जायँ; एशियाके पराधीन देश, अफ्रिकाकी पराधीन जातियाँ, पहले आज़ाद हों। स्वतंत्रता-संग्राम संसारकी सभी परतंत्र जातियाँ छेड़ चुकी हैं, और आजसे २०–२५ वर्षोंके भीतर प्रत्येक पराधीन देशके लोग अपने देशके शासनकी बागडोर विदेशियोंके हाथसे ले लेंगे; गुलामोंमें अपनी विपत्तियोंको देखकर बेचैनी बढ़ती जा रही है; और साथ ही साथ उनका संघटन, उनका साहस और स्वतंत्रताके लिए बलिदान करनेकी शक्ति भी बढ़ती जा रही है। इधर संसारके कुछ ऐसे स्वतंत्र देश जो दूसरे देशोंको गुलाम नहीं बनाये हुए हैं, उन देशोंपर दबाव भी डालते जाते हैं जो दूसरोंको गुलाम बनाये हुए हैं। मेरा अनुमान है कि अधिकसे अधिक २०–२५ वर्षमें संसारमें हरएक देश और हरएक जाति अपनी रक्षा, अपनी शिक्षा और अपने व्यापारका प्रबंध अपने हाथमें ले लेगी। संसारके साम्राज्य-प्रिय देशों और जातियोंकी हार अब अनिवार्य है।

जब सब देश और सब जातियाँ स्वतंत्र हो जायँगी तो दूसरा परिवर्तन शासनके क्षेत्रमें होगा; अर्थात्, किसी देश या जातिमें एक या कुछ समुदायवाले, एक या कुछ मतवाले, एक या कुछ श्रेणीवाले दूसरे समुदाय, मत या श्रेणीवालोंको अधिकार, शिक्षा और सुखसे रहित न रख सकेंगे। शासनका क्षेत्र विस्तृत और व्यापक हो जायगा। सबकी शारीरिक आवश्यकताएँ पूरी करना शासनका परम कर्तव्य

होगा। राज्य चलानेवालोंका काम सिर्फ जानोमालकी हिफाजत करना ही न रहेगा, वरन् लोगोंको धन कमाने लायक बनाना भी उनका काम होगा। सबके लिए धनोपार्जनका प्रबंध करना,—बेकारी और आधे पेट गुजर करनेकी मजबूरीको मिटाना शासकोंका खास काम होगा। यह बात कोई न मानेगा,—इस विचारका पता भी न रहेगा कि शारीरिक सुख किस्मत, इत्तफ़ाक़ या व्यक्तिगत कोशिशसे प्राप्त होता है। इस विश्वासका पता भी न रहेगा कि सबका सुखी रहना या सम्पन्न होना असम्भव है। भावी शासनमें शारीरिक सुख हरएकका जन्मसिद्ध अधिकार होगा। किसीको दरिद्र रहने देना या किसीको दरिद्रताका भय या दरिद्रताकी चिन्ता होने देना घोरतम पाप समझा जायगा। भविष्यमें शासन उन्हींके हाथोंमें आनेवाला है जो इस बातको जानते हैं कि किसीको बेकार रहने, आधे पेटपर काम करने या दरिद्र रहनेकी जरूरत नहीं। झूठ, चोरी, डाका, जुआ, आत्म-घात, कायरता, नास्तिकता आदिसे बढ़कर पाप दरिद्रता मानी जायगी। और वही इन सबकी जड़ भी।

भविष्यमें समाज-सुधारकों और शासकोंको दरिद्रताके विरुद्ध सग्राम करना है; अधर्म, पाप, व्यभिचार आदिके विरुद्ध नहीं। चाहे कोई किसी मत, किसी विचार, किसी आचारका हो, उसको दरिद्रतासे मुक्त करना भावी शासकोंका कार्य होगा। आर्थिक सुखका अधिकारी होना किसी धर्म, किसी विचार, किसी आचारके माननेपर निर्भर नहीं होगा—वरन् वह सबका, हरएकका जन्म-सिद्ध अधिकार होगा। आर्थिक उन्नतिमें न किसीकी तरफदारी की जायगी, और न किसीको उससे वञ्चित रखा जायगा।

हिन्दू, मुसलमान, ईसई, पारसी, बौद्ध या जैन,—सबको बराबर आर्थिक सुख-प्रदान करना भावी शासनका काम होगा। इस मामलेमें आस्तिक-नास्तिक,—सब बराबर होंगे। भावी नेता और शासक हिन्दू या मुसलिम श्रेष्ठता अथवा योरप या एशियाकी श्रेष्ठताका स्वप्न नहीं देखेंगे; वैदिक धर्म या ईसाई अथवा इसलामी धर्मका झंडा संसार-भरमें या अपने देशमें गाड़नेका प्रयत्न नहीं करेंगे। 'मनुष्य-वाद' रूपी सूर्यके बढ़ते हुए प्रकाशके सामने यह बादलसमूह और तम छूट जायगा। भविष्यमें एक ही संप्रदायका अस्तित्व स्वीकार किया जायगा; और वह सम्प्रदाय मत-मतान्तरसे धर्म-अधर्मसे मुक्त मनुष्य-जाति होगी। सारे संसारमें सबको सुखी और सम्पन्न बनाने-वाले विज्ञानका झंडा गड़ेगा।

इस सुख और सम्पन्नताको कुछ और साफ तौरपर समझ लेना ज़रूरी है। नौकरी, तिज़ारत, कारीगरी, मजदूरी और खेती,—इनमेंसे जो भी काम कोई करना चाहे, उसका इंतज़ाम करना शासकोंका काम होगा। दूसरा काम यह होगा कि इन कामोंके करनेवाले कमसे कम दो-तीन प्राणियोंके परिवारके लिए स्वादिष्ट और पुष्टिकारक भोजन पा सकें; और अपनी कमाईसे इतना बचा सकें कि बीमार या बुड्ढे हो जानेपर; कुछ न करते हुए भी, भोजन पा सकें तथा हरएक आदमीको हरएक कपड़ेके कमसे कम पाँच जोड़े प्राप्त हो सकें। उस समय हरएकको साफ, हवादार, सुंदर और काफी बड़ा मकान रहनेको मिलेगा। हरएक आदमीको सालमें कमसे कम तीन महिनेकी छुट्टी मिलेगी। हरएक आदमीके पास साइकिल (जो इस समयकी साइकिलसे कहीं उत्तम, सुगम और तेज होगी और बिजलीसे चलेगी)

और हर परिवारके पास बिजलीसे चलनेवाला मोटर होगा। इन सवारियों अथवा हवाई जहाजोंपर हरएक आदमी सारे संसारकी सैर कर सकेगा और इसमें दो तीन सौ रुपयोंसे अधिक खर्च न होगा। सड़कें प्रत्येक नगरकी चौड़ी, साफ और पत्थरकी होंगी। उनकी तादाद इतनी बढ़ जायगी कि वे जालकी तरह पृथिवी-भरमें फैली नज़र आवेंगी। रोशनी करना, पानी पहुँचाना, कारखाने चलाना, खेती करना, खाना पकाना, ठण्डक या गर्मी पहुँचाना, मकान बनाना आदि सब काम बिजलीसे होंगे। धुएँ, गर्द और शोरका नाम तक न रहेगा।

संसारमें ग्राम न रह जायँगे। सारा संसार नगरोंसे सुशोभित हो जायगा। बड़े बाग और पार्क, जंगल और झीलें, पुस्तकालय, नाट्यशाला, चित्रशाला, संगीतशाला, सिनेमा, क्लब, होटल आदि प्रत्येक नगरमें होंगे।

ये सब प्रबन्ध विज्ञानकी उन्नतिके साथ शासकोंद्वारा नगरनगरमें हो जायँगे, और इनका सुख प्रत्येक, प्राणीको मिल सकेगा।

प्रत्येक मनुष्य सामाजिक जीवनके ये सब सुख भोगता हुआ जी चाहनेपर अपने घरमें, अथवा किसी सुन्दर और रमणीय प्राकृतिक दृश्यके स्थानमें एकान्त भी प्राप्त कर सकेगा और अपने विचारों भावनाओं और कल्पनाओंमें कुछ समयके लिए तल्लीन हो सकेगा, प्रत्येक प्राणीको मनन अध्ययनके लिए पर्याप्त समय मिल सकेगा। और अधिकांश मनुष्य कला-सम्बन्धी सृष्टि करने या कलाका आनन्द उड़ानेमें लग सकेंगे। बाह्य और आन्तरिक दोनों क्षेत्र मनुष्यके कर्म-क्षेत्र बन जायँगे। जीवन सरस निर्मल और सुखमय होता जायगा।

सब लोग उच्च कोटिकी शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे। भावी शासन इतना उदार और सहानुभूतिपूर्ण होगा और इतनी बुद्धिमत्तासे चलाया जायगा कि हरएक मनुष्यकी मानसिक, नैतिक और शारीरिक उन्नति इस दर्जेतक पहुँच जायगी कि प्रत्येक मनुष्य लगभग प्रत्येक विद्यासे कुछ न कुछ परिचित हो जायगा। स्वार्थ, संकीर्णता, उच्छृंखलता और शारीरिक रोगोंसे मुक्त हो जायगा। जाति और श्रेणीका भेद बिलकुल मिट जायगा। कोई न कोई अंतर्राष्ट्रीय भाषा नियत हो जायगी। उसके जाननेवालोंकी संख्या प्रतिदिन बढ़ती जायगी और सारा संसार एक परिवार बन जायगा। मनुष्य मात्रका जीवन अनावश्यक और हानिकारक बन्धनोंको तोड़ता हुआ प्रतिदिन उदार होता जायगा। आजकल जैसे स्वच्छ, स्वस्थ, उदार और समझदार आदमी कुछ ही होते हैं, वैसे आजके सौ बरस बाद सौ फी सदी होंगे। रोगी, निर्बल, बेढंगे, गंदे, संकीर्ण, मूर्ख मनुष्य आजके सौ बरस बाद न रहेंगे; और मनुष्यवादी राजनीतिके परिणामस्वरूप जो शिल्पकी वैज्ञानिक और आर्थिक उन्नति होगी, उसीका यह फल होगा। पहले पृथ्वी-तल एक करके विज्ञान और मनुष्यता-वाद मानव-जीवनकी एकताको सम्भव बना देंगे।

विज्ञान और मनुष्यवादके द्वारा दरिद्रता और अत्याचार संसारसे मिट जायँगे। दरिद्रता और अत्याचारके मिटते ही सच्चे प्रजातन्त्रकी स्थापना होगी। इसका प्रभाव मनुष्यके जीवनपर बहुत गहरा और प्रबल होगा। मानव-चरित्रके लिए ये परिवर्तन क्रांतिकारी होंगे। आत्म-सम्मान, मानव-जीवनकी बहुमूल्यता, सच्चे भ्रातृ-भाव और सच्ची बराबरीके भाव हरएककी आत्मामें खुद-ब-खुद जोर पकड़ते

जायँगे। केवल दया, ईश्वर और धर्म-ग्रन्थोंकी दुहाई देकर मनुष्यमें भ्रातृभावका प्रचार नहीं हो सकता। जब कोई दरिद्र, रोगी, मूर्ख और बेढंगा न रहे, तभी एक दूसरेके लिए सच्चा प्रेम और सच्चा सम्मान पैदा हो सकता है। आजसे सौ बरस बाद पुलिस, जेल, अदालत, उपदेश और धर्मकी संस्थाएँ करीब करीब बेकार हो जायँगीं। पढ़े लिखे, स्वस्थ, संपन्न और समझदार स्त्री-पुरुषपर अन्याय कोई करेगा ही नहीं।

नतीजा यह होगा कि लोगोंके पारस्परिक व्यवहार स्वयं न्याय्य और सहानुभूतिपूर्ण हो जायँगे। मत मतांतर और धर्म, जाति-पाँति आदि सब मिटते चले जायँगे। सृष्टि कैसे बनी, आत्म-परमात्मा-सम्बन्धी विवाद,—ये सब मनन अध्ययन और अनुभवके विषय रह जायँगे। इसी तरह, पूजा पाठ ध्यान इत्यादि भी। इनके कारण अलग अलग सम्प्रदाय, अलग अलग समाज, अलग अलग सभ्यताका निर्माण न हो सकेगा।

इस महान् परिवर्तनका प्रभाव स्त्री-पुरुषके सम्बन्धपर और विवाहकी प्रथापर क्या पड़ेगा? स्त्रियाँ मानसिक, नैतिक अथवा शारीरिक किसी भी लिहाज़से पुरुषोंके मुकाबलेमें 'अबला' न रहेंगी। स्त्री-पुरुष दोनों भावी शासनमें इतने शिक्षित और इतने स्वस्थ होंगे कि अलग अलग रहकर कमा-खा सकें और हर मर्द या औरतको वैतनिक काम देना भावी शासनका फर्ज़ होगा। विवाहकी प्रथा इस अर्थमें न रह जायगी कि पण्डितों या धर्माचार्योंद्वारा संस्कारोंके साथ किसी खास जाति, धर्म या गोत्रमें, विवाह कर दिया जाय। जन्म-भरके लिए विवाहका सम्बन्ध जरूरी न रहेगा। हर बच्चेकी परवरिश और हरएक नौजवानको सवैतनिक काम देनेका भार, जैसा

ऊपर कहा जा चुका है, शासनपर होगा। मानव-प्रकृति शिक्षा, स्वास्थ्य, संपन्नता और समुन्नत वायु-मंडलके कारण ऐसी अवश्य हो जायगी कि विलासकी इच्छा सर्वप्रबल या मुख्य इच्छा न रह जायगी। मानव-चरित्र इतना सधा हुआ होगा कि विलासप्रियता मनुष्यपर प्रभुत्व प्राप्त न करने पावेगी और आजसे सौ बरस बादका प्रेम आजकलके वैवाहिक और दाम्पत्य जीवनके दुर्व्यवहारोंसे सर्वथा मुक्त होगा।

अब सवाल यह पैदा होता है कि रहन-सहन, शिक्षा और व्यवहारोंमें समता और बराबरी हो जानेके बाद जातियों और व्यक्तियोंमें विलक्षणता, वैचित्र्य और व्यक्तित्व बाकी रहेंगे या नहीं? ज़रूर बाकी रहेंगे। लेकिन हुकूमत और गुलामी, संपन्नता और दरिद्रता, शिक्षा और मूर्खता, सबल और निर्बल, ऊँच और नीचके भेद न रहेंगे। जाति जाति और देश देशमें मुख्य भेद भाषाका और मामूली भेद पहनने-ओढ़नेका रह जायगा। नगर-निर्माणकी प्रथाओं और मामूली रस्म-रिवाजोंके भी कुछ भेद रहेंगे। व्यक्तियों और व्यक्तिगत चरित्रोंमें कला, दर्शन, विज्ञान और व्यवसायकी पसंदगीमें विचित्रता और विलक्षणता देखनेमें आवेगी, और यह विलक्षणता और वैचित्र्य मानव-जीवनको सुसंस्कृत और सरस बनावेंगे।

कला-कौशल्य, दर्शन, विज्ञान, साहित्य, विनोद, इत्यादि अनेक क्षेत्र हैं जिनमें प्रत्येक प्राणीको अपना व्यक्तित्व प्रकट और विकसित करनेका पूरा अवसर रहेगा। मानवी विलक्षणता कंगाल और धनाढय, गुलाम और हाकिम, बड़े और छोटेके भेदोंमें नज़र नहीं आवेगी। भावी प्रजातंत्र उस भद्र-समाजका नाम होगा जिसकी समता और विलक्षणता दोनों स्वाभाविक और सुखदायक होंगी।

अंतर्राष्ट्रीय लड़ाइयाँ भी जो कुछ होनी होंगी, आजसे २०-२५ सालके भीतर ही हो चुकेंगी। प्रत्येक महायुद्ध मनुष्यता-वादके भावोंको जाग्रत करता जायगा। एशिया और आफ्रिकाकी स्वतंत्रताके बाद राष्ट्र-राष्ट्रकी लड़ाइयोंका होना असंभव हो जायगा। लड़ाइयाँ केवल दो कारणोंसे होती हैं,—एक तो किसी देश या जातिका किसी देश या जातिको गुलाम बनाये रखना और इस हुकूमतसे तिजारती और वैज्ञानिक उन्नतिमें अन्य देशोंसे बहुत पीछे रहना। लेकिन आजसे बीस-पचीस बरस बाद कोई देश या जाति न तो किसीकी गुलाम रहेगी, और न विज्ञानमें औरोंसे इतनी पीछे कि जंगली समझी जाय। जंगली कौमें अलबत्ता दूसरोंकी गुलाम बनी हुई हैं; लेकिन अब वे भी सचेत हो चली हैं।

अत: आजसे सौ बरस बाद लड़ाई, अत्याचार, दरिद्रता, मूर्खता, अविद्या, मत-मतांतर, मज़हब, रोग, महामारी, अनावश्यक और हानिकारक बंधन तथा भेद संसारसे उठ जानेवाले हैं। उनका स्थान व्यापक और उदार प्रेम, सुख, विद्या, संपन्नता और स्वतंत्रता लेनेवाली है,—एक सरल, अद्भुत, उदार, और सजीव सभ्यताका विकास होनेवाला है। धर्मोपदेशकों, आचार-सुधारकों और खुदाई फौजदारोंका स्थान उस समाजमें न होगा। मनुष्य भोग, काम, विचार, कल्पना सबमें स्वतंत्र होंगे।

हरएक आदमीके लिए केवल इतना ज़रूरी होगा कि वह चार या छह घंटे अपने व्यवसायका काम कर दिया करे। बाकी समयके लिए सब स्वतंत्र होंगे। नेताओं और शासकोंका काम असदाचार और अधार्मिकतासे लड़ाई करना न होगा। उनका संग्राम अविद्या, दरिद्रता, भद्देपन, बेढंगेपन, मूर्खता, और भेद-भावके विरुद्ध होगा।

आजसे सौ बरस बाद मनुष्यता दरिद्रता, मूर्खता और भेद भावके बंधनोंसे मुक्त दृष्टिगोचर होगी। मानव-जीवनका अंग अंग स्वतंत्र होगा। इसके बाद क्या होगा? समाजकी प्रगति इन बंधनोंसे मुक्त होकर किधर होगी? उसके बाद किन क्षेत्रोंमें किस तरहके परिवर्तन होंगे?—यह सब इस लेखकी सीमाके बाहर हैं। लेकिन आर्थिक और मानसिक उन्नति और बेकार बंधनोंसे मुक्तिका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि शिक्षा, कला, दर्शन, विचार और आकांक्षाएँ मानवी चैतन्यको गहन, तीव्र, विशाल, व्यापक और चमत्कृत बनानेकी ओर झुकती जायँगी। अध्यात्म ज्ञान और मननकी ओर मानवी वृति झुकती जायगी, और मानवी जीवन अधिक शक्तिशाली, अधिक रोचक, अधिक गहन, अधिक चमत्कृत, दिव्य, तीव्र, तीक्ष्ण, सरस, सुकोमल और सुसंस्कृत होता जायगा। मनुष्यकी आँखोंमें स्वर्गीय जीवनकी छटा झलकेगी, उसके मुखपर अलौकिक कांति होगी और उसका जीवन अमरताकी ओर बारंबार संकेत करेगा। शारीरिक सुखोंपर आत्मिक सुखका रंग चढ़ेगा।

प्रश्नावली

१ निम्नलिखित शब्दोंके अर्थ लिखो और उन्हें वाक्योंमें प्रयुक्त करो— हिफाजत, इतिफ़ाक, व्यक्तिगत, जन्म-सिद्ध, सम्पन्नता, मानवी वृत्ति, सुसंस्कृत।

२ वैज्ञानिक सभ्यताका प्रभाव गार्हस्थ्य-जीवनको किस प्रकार परिवर्तित कर रहा है?

३ कल्पना करो कि मनुष्य अचानक ऐसी गहरी नींदमें सो गया कि वह सौ साल बाद उठा, तब वह अपना अनुभव किस प्रकार वर्णन करेगा?

दादा और पोतेकी चिट्ठी-पत्री

चिरंजीव बाबू नवीनकिशोर,

आजकलके अदब-कायदे, रीति-रस्म, मुझे मालूम नहीं। इसी कारण तुम्हारे साथ पहले पहले बातचीत अथवा चिट्ठी-पत्रीका व्यवहार करनेमें कुछ डर-सा मालूम होता है। पहले हम बातचीतमें सबसे प्रथम बापका नाम पूछा करते थे; सुनता हूँ कि आजकल बापका नाम पूछनेका दस्तूर नहीं है। सौभाग्यसे तुम्हारे बापका नाम मुझसे छिपा नहीं है, क्यों कि मैंने ही उसका नाम-करण किया था। उसका नाम अच्छा तो नहीं रक्खा गया; पर 'गो-वर्धन' नाम क्यों रक्खा गया, इसका पता अब चला है। देवताओंको यह मालूम था कि तुम्हारे 'वर्द्धन' करनेका,—अर्थात् पालन-पोषण कर बड़ा करनेका भार उसीके मत्थे पड़ेगा। मालूम होता है कि इसीसे जब उस दिन पंडितजीने तुम्हारे पिताका नाम तुमसे पूछा था तो तुम्हारे बदनमें आग लग गई थी। अच्छा तो अब तुम अपने पिताका एक अच्छा-सा नाम रख लो; मैं अपना रक्खा हुआ 'गो-वर्द्धन' नाम फेरे लेता हूँ।

सच बात यह है कि पुराने समयमें हम लोग नामके विषयमें बहुत नहीं सोचते थे। हम समझते थे कि नाम आदमीको बड़ा नहीं करता बल्कि आदमी ही नामको बड़ा बनाता है। बुरा काम करनेसे आदमीकी निंदा होती है और भला काम करनेसे प्रशंसा होती है। पिता केवल एक ही नाम रख सकता है; उस नामको भला या बुरा बनाना लड़केके ही हाथमें है। जरा सोचो तो, प्राचीन कालके बड़े बड़े नाम सुननेमें कुछ बहुत मधुर नहीं हैं; युधिष्ठर, भीम,

द्रोण, भरद्वाज, शाण्डिल्य, जनमेजय, वैशम्पायन इत्यादि। परन्तु ये सब नाम अक्षय-वटकी भाँति आजतक भारतवर्षके हृदयपर अचलरूपसे विराजमान् हैं। आजकलके उपन्यासोंमें ललित, नलिन, मोहन आदि कितने ही मीठे मीठे नाम आविर्भूत हो रहे हैं; परन्तु उन्हें आजकलकी पाठक-पिपीलिकायें घड़ी-दो घड़ीमें ही साफ कर देती हैं; सुबहका नाम शामतक भी याद नहीं रहता।

चिट्ठी लिखने बैठते ही मेरे मनमें पहला प्रश्न यही उठा कि कैसे आरम्भ करूँ। एक बार मनमें हुआ कि 'माई डियर नाती' लिखूँ, पर यह सहा नहीं गया; पीछे सोचा, 'मेरे प्रिय नाती;' किन्तु, यह भी बूढ़ेके कलमसे न निकला, झट लिख बैठा—'आशीष।' लिखा तो सही, पर पीछे पढ़कर मैंने एक साँस ली और सोचने लगा कि यदि लड़के आजकल हमें प्रणाम नहीं करते हैं, तो क्या अब हमको भी आशीर्वाद देना छोड़ देना चाहिए? भाई, हम तो यही चाहते हैं कि तुम्हारा मंगल हो। हमारा जो होना था, हो गया, तुम हमको प्रणाम करो या न करो, इसमें हमारा हानि-लाभ कुछ नहीं है, तुम्हारा ही है। भक्ति करनेमें जिन्हें लज्जा आती है उनका कभी मंगल नहीं होता। बड़ोंके निकट नम्र होकर ही मनुष्य बड़ा होना सीखता है; केवल सिर ऊँचा करनेसे कोई बड़ा नहीं हो सकता। जो सोचता है कि पृथिवीमें मुझसे कोई बड़ा नहीं है, मैं ही सबसे ज्येष्ठ हूँ, मैं ही सबसे श्रेष्ठ हूँ, वह वास्तवमें सबसे छोटा है। उसका हृदय इतना क्षुद्र है कि वह अपनेसे बड़ी वस्तुकी कल्पना तक नहीं कर सकता। तुम कहोगे कि, 'तुम मेरे पितामह होनेहीसे मुझसे बड़े हो गये, यह कोई बात नहीं,' पर क्या मैं तुमसे बड़ा नहीं हूँ?

तुम्हारे पिता मेरे स्नेहसे पले हैं, इसलिए मैं, तुमसे बड़ा हूँ। मैं तुम्हें प्यार कर सकता हूँ, इसलिए तुमसे बड़ा हूँ। हृदयसे मैं तुम्हारा मंगल चाहता हूँ, इससे भी मैं तुमसे बड़ा हूँ। माना कि तुमने मुझसे दो-चार अँगरेजी किताबें अधिक पढ़ी हैं, पर इससे क्या होता-जाता है? यदि तुम १८००० वेब्स्टर डिक्शनरियोंके ढेरपर खड़े होगे तो भी तुम्हें मेरे हृदयके नीचे ही रहना पड़ेगा; तब भी मेरे हृदय-स्रोतसे तुम्हारे माथेपर आशीर्वाद बरसता रहेगा। पुस्तकोंके पर्वतपर चढ़कर तुम मुझे नीची दृष्टिसे देख सकते हो, अपनी आँखोंके दोषसे मुझे तुच्छ समझ सकते हो; पर मुझे स्नेहकी दृष्टिसे कदापि नहीं देख सकते। जो मनुष्य बिना संकोचके सिर झुकाकर प्रेमका आशीर्वाद ग्रहण करता है वह धन्य है, उसका हृदय उर्वर खेतकी भाँति फल-फूलोंसे शोभित होता है। और यदि मनुष्य बालूके ढेरकी तरह सिर ऊँचा कर प्रेमाशीर्वादकी उपेक्षा करता है, तो वह उसकी शून्यता, शुष्कता और श्रीहीनता है; उसका मरुभूमि-तुल्य मस्तक मध्याह्नकालके सूर्यकी ज्योतिसे जलता रहता है। खैर, जो हो, मैं तुम्हें सौ बार 'आशीष' लिखूँगा, तुम चिट्ठी पढ़ो या न पढ़ो।

तुम भी जब मेरे नाम चिट्ठी लिखो, तब उसे प्रणामपूर्वक आरम्भ करना। तुम कह सकते हो कि 'यदि मुझे भक्ति न हो तो मैं क्यों प्रणाम करने लगा? मैं इन सब असभ्य आचार व्यवहारोंसे सम्बन्ध नहीं रखता।' पर यदि यही सच है तो तुम सारे संसारको 'माई डियर' क्यों लिखते हो? मैं बूढ़ा तुम्हारा दादा, साढ़े तीन महीनेसे खाँसीकी बीमारीसे मर रहा हूँ और तुमने एक बार भी मेरी खोज खबर नहीं ली; पर समस्त संसारके आदमी तुम्हारे इतने प्रिय हो

गये कि तुम्हें बिना 'माई डियर' लिखे चैन नहीं पड़ता? तो 'माई डियर' लिखना भी क्या एक दस्तूर-मात्र नहीं है? अन्तर इतना ही है कि एक है अँगरेजी दस्तूर और दूसरा भारतीय। तब यदि दस्तूरके ही अनुसार चलना पड़ा तो क्या भारतीयके लिए भारतीय दस्तूर ही अच्छा नहीं है? कर्त्तव्य-पाशमें बाँध रखनेके लिए,—प्रत्येक व्यक्तिको अपने अपने कर्त्तव्यका सर्वदा स्मरण दिलाते रहनेके लिए समाजमें बहुत-से नियम दस्तूर रक्खे गये हैं। सिपाहियोंको जिस तरह बहुतसे नियमोंसे बद्ध रहना पड़ता है, नहीं तो वे युद्धके लिए प्रस्तुत नहीं हो सकते, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यको हजारों रीति-रस्मोंके बन्धनोंसे बँधे रहना पड़ता है; नहीं तो वह समाजके कार्य-पालनके लिए प्रस्तुत नहीं हो सकता। अपने जिन बड़ोंको तुम सदा प्रणाम करते हो, जिनके लिए चिट्ठी-पत्री तथा सम्भाषणमें आदर-भक्ति दिखलाते हो, जिनको देखकर तुम खड़े हो जाते हो; उनका तुम इच्छा करनेपर भी, एकाएक अपमान नहीं कर सकते। हजारों दस्तूरोंके पालन करनेसे तुम्हें एक ऐसी शिक्षा प्राप्त हो जाती है कि बड़ोंका आदर करना तुम्हारे लिए सहज हो जाता है और उनका आदर न करना तुम्हारी शक्तिके बाहर हो जाता है। हम अपने पुराने दस्तूरोंको छोड़कर इसी शिक्षासे वञ्चित हो रहे हैं। भक्ति और प्रेमका बन्धन टूटता जा रहा है, पारिवारिक सम्बन्ध शिथिल हो रहा है; समाज उच्छृंखल हो गया है।

तुम दादाको बिना प्रणाम किये ही चिट्ठी लिखना आरम्भ करते हो, यह तुमको एक बहुत सामान्य बात मालूम होती होगी; पर, इसे तुम जितना सामान्य समझते हो यह उतनी सामान्य नहीं है।

कितने ही दस्तूर हमारे हृदयसे ऐसे चिपटे हुए हैं कि यह कहना कठिन है कि उनका कितना अंश दस्तूर है और कितना हृदयका कार्य है। हम स्वाभाविक भावसे क्यों प्रणाम करते हैं ? प्रणाम करना भी तो एक दस्तूर ही है। ऐसे भी देश हैं जहाँ लोग भक्ति-सहित प्रणाम करनेके बदले कुछ और करते हैं। हम बड़ोंके सामने प्रणाम किये बिना ही क्यों नहीं जा खड़े होते ? प्रणाम यथार्थमें क्या है ? भक्तिका यह बाहरी लक्षण,—एक प्रकारकी शारीरिक हरकत है जो हमारे देशमें बहुत दिनोंसे चली आती है। जिसपर हमारी भक्ति होती है, उसके प्रति स्वभावतः हमें अपनी हार्दिक भक्ति दिखानेकी इच्छा होती है। प्रणाम करना केवल उसी भक्ति दिखानेका एक उपाय है। यदि मैं किसी भक्तिभाजन सज्जनके पास जाकर प्रणामके बदले भक्ति-पूर्वक तीन बार ताली बजाऊँ तो वे जिन्हें मैं अपनी भक्ति दिखाना चाहता हूँ मेरा भाव कुछ नहीं समझेंगे; वे इससे उलटा अपना अपमान समझ सकते हैं। परन्तु यदि भक्ति दिखानेके लिए पहलेसे ही ताली बजानेका नियम होता तो निःसंदेह प्रणाम करना ही दोष होता। अतएव, दस्तूरको छोड़कर हम अपने हृदयका भाव प्रकाश नहीं कर सकते; बल्कि, हृदयका अभाव ही प्रकट करते हैं।

इसलिए मुझे तुम प्रणामपूर्वक चिट्ठी लिखना, भक्ति हो या न हो। देखनेमें तो अच्छा लगेगा ! तुम्हें और भी दस आदमी अपने दादाओंको भद्रतापूर्वक चिट्ठी लिखना सीखेंगे और क्रमशः बड़ोंकी भक्ति करना भी सीखेंगे।

आशीर्वादक

षष्ठीचरण शर्मा

२

दादाजीके पद-कमल-युगलमें प्रणाम।

और भी भक्ति चाहिए तो कहो 'युगल' में और एक 'युगल' जोड़ दूँ। दादा, तुम्हारा अन्त मिलना कठिन है। बहुत दिनोंसे तो तुम हमसे हँसी-ठट्ठा करते चले आये थे, परन्तु आज एकाएक भक्ति अदा करनेके लिए एक परवाना निकाल बैठे हो, इसका अर्थ क्या है? मैंने देखा है कि जबसे तुम्हारे सामनेके दो दाँत गिर गये हैं, तबसे तुम्हारे मुँहमें कोई बात रुकती ही नहीं है। यद्यपि तुम्हारे दाँत टूट गये हैं पर उनकी तेज धार तुम्हारी जीभपर अब भी विद्यमान् है। उससे तुम अपने निर्दोष नाती-पोतोंपर ही दंशन-सुखका अनुभव कर लेते हो। तुम्हारी बे-दाँतकी हँसी मुझे बड़ी अच्छी लगती है। किन्तु तुम्हारा बे-दाँतका काटना उतना अच्छा नहीं मालूम होता।

तुम यह प्रमणित करना चाहते हो कि तुम्हारे समयमें जो कुछ था सब अच्छा था और हमारे समयमें जो है सब खराब है। इस विषयमें मैं भी एक-दो बातें कह देना चाहता हूँ। यदि इससे तुम्हारे अदब-कायदेका कुछ उल्लंघन हो तो माफ करना। मैं जो कुछ करता हूँ वह तुम्हारी दृष्टिमें बेअदबी है, इसीसे डर लगता है। तुम्हें वैसे तो बहुत कम दीखता है, पर पोतोंके दोष बिना चश्मेके ही खूब साफ देख पड़ते हैं।

जिस आदमीका जिस समयमें जन्म होता है उस समयपर यदि उसको प्रेम न हो तो वह उस कालके लिए उपयोगी काम नहीं कर सकता। जो समझता है कि अतीत काल बहुत अच्छा था और वर्तमान समय अति हेय है, उसमें कार्य करनेकी शक्ति नहीं रह जाती।

वह केवल भूतकालके स्वप्न देखता है और लम्बी लम्बी साँसें लिया करता है; केवल उस अतीतका प्राप्त होना ही उसको वाञ्छनीय रह जाता है। जिस प्रकार अपना देश है उसी प्रकार अपना समय भी है। जिस प्रकार स्वदेशको प्यार न करनेसे स्वदेशकी सेवा नहीं हो सकती, उसी प्रकार स्वकालपर अनुराग न करनेसे स्वकालका कार्य नहीं किया जा सकता। यदि तुम सर्वदा स्वदेशकी निन्दा हीं करते रहो, उसमें कोई भी गुण तुम्हें देख न पड़ें तो तुम स्वदेशके उपयोगी कार्य भली भाँति कदापि नहीं कर सकते। केवल कर्त्तव्य समझकर तुम स्वदेशका उपकार करनेकी चेष्टा कर सकते हो, पर वह चेष्टा सर्वदा विफल होगी। तुम्हारा हृदयहीन प्रयत्न विदेशी बीजकी भाँति स्वदेशी क्षेत्रमें अंकुरित नहीं हो सकता। उसी प्रकार जो स्वकालके केवल दोष ही देखता है, उसके गुणोंपर जिसकी दृष्टि नहीं, वह चेष्टा करनेपर भी स्वकालका कार्य भली भाँति नहीं कर सकता। एक विचारसे तो यह कहा जा सकता है कि वह है ही नहीं; वैसे आदमीका मानो इस समयमें जन्म ही नहीं हुआ; उसका जन्म अतीतकालमें हुआ है और वह अतीत कालमें ही रहता है; उसको इस समयकी जन-संख्यामें गिनना ठीक नहीं।

सो दादाजी, तुम जो अपने समयको प्यार करते हो और उसे अच्छा बतलाते हो, तो यह तुम्हारा एक गुण है। इससे यह मालूम होता है कि तुमने अपने समयके कार्य किये हैं। तुमने अपने मा-बापकी भक्ति की है, पड़ोसियोंको आपद-विपदमें सहायता दी है, शास्त्रके अनुसार धर्म-कर्म किया है, दान-ध्यान किया है और हृदयकी तृप्ति प्राप्त की है। जिस दिन हम अपना कर्त्तव्य ठीक तौरसे करते हैं,

उस दिन सूर्यकी ज्योति हमारे सामने बहुत ही उज्ज्वल मालूम होती है, उस दिनकी सुख-स्मृति बहुत दिनों तक साथ रहती है। पुराने समयका कार्य तुमने सम्पूर्ण किया है, कुछ शेष नहीं रख छोड़ा है; इसीलिए आज बुढ़ापेमें विश्रामके समय वह पुरानी स्मृति इतनी मधुर मालूम होती है। किन्तु, उस स्मृतिको लेकर तुम हमारे मनको वर्त्तमान समयसे क्यों विरक्त करना चाहते हो? लगातार इस कालकी निन्दा कर करके हमारे हृदयको इस समयसे खैंच निकालनेकी चेष्टा क्यों करते हो? आशीर्वाद दो कि अपने देश और अपने समयपर हमारा अटल प्रेम बना रहे।

गङ्गोत्तरीके साथ गंगाका सम्बन्ध बिना छिन्न हुए सहस्र धाराओंके द्वारा चला आ रहा है। परन्तु, तो भी क्या गंगा लाख चेष्टा करके भी गंगोत्तरीके ऊपर कदापि चढ़ सकती है? उसी प्रकार; तुम्हारा समय अच्छा रहा हो या बुरा, अब हम उस समयमें कदापि नहीं जा सकते। यदि यह ठीक है तो असाध्य कार्यके लिए व्यर्थ विलाप-परिताप न करके जिस अवस्थामें जन्म हुआ है उसी अवस्थाके साथ मेल-मिलाप कर लेना अच्छा है. और ऐसे मेलमें बाधा डालना मानो अमंगलोंकी सृष्टि करना है।

वर्त्तमान समयपर अरुचि सदा वर्त्तमानहीके दोषसे नहीं होती है। बहुधा यह हमारी असम्पूर्णताके कारण तथा हमारे हृदयके गठनके दोषसे होती है। वर्त्तमान ही हमारे रहनेकी जगह और काम करनेका स्थान है। जिसको कार्य-क्षेत्रसे अनुराग नहीं है, वह धोखा देना चाहता है। सच्चा कृषक अपने खेतको प्राणोंसे बढ़कर प्यार करता है और उसमें बीजके साथ साथ प्रेमका बीज

बोता है। जो कृषक काम करना नहीं चाहता, हीले हवालेसे काम निकालना चाहता है, उसे अपने खेतमें पैर रखते ही मानों काँटे गड़ने लगते हैं, वह झुँझला कर कहता है—हमारी ज़मीनमें यह दोष है, वह दोष है, इसमें काँटे हैं, कंकड़ हैं, इत्यादि। अपनी छोड़ औरोंकी जमीन देखते ही उसकी आँखें जुड़ा जाती हैं।

समयका परिवर्तन हुआ है, और यह सदा ही हुआ करता है। इस हेर-फेर, लौट-बदलके लिए हमको तय्यार होना होगा, नहीं तो हमारा जीवन ही निष्फल हो जायगा। जिस प्रकार पुराने समयके जीव-जन्तु म्यूजियममें (अजायबघरमें) पड़े हुए हैं; हमें भी ठीक उसी तरह पृथिवीपर निवास करना पड़ेगा। परिवर्तनोंमें जो सार्थकता है, जो गुण हैं, उन्हें ढूँढ़ निकालना होगा। क्योंकि जिस भूमिपर हम हैं, उसीका रस चूसकर हमें बढ़ना है, अन्य कोई उपाय नहीं है। यदि वास्तवमें हम पानीमें गिरकर बहे जाते हैं तो हमें तैरनेकी चेष्टा करनी चाहिए, पैरोंके बल चलनेका प्रयास बिलकुल व्यर्थ होगा।

यह ठीक नहीं है कि समयके प्रभावसे मनुष्योंके हृदयसे भक्ति सम्पूर्णतः लुप्त हो गई है। हाँ, इतना सम्भव हो सकता है कि भक्तिके स्रोतका मुख एक ओरसे दूसरी ओर फिर गया हो। पहले हमारे देशमें व्यक्तिगत भावकी ही अधिक प्रधानता थी। भक्ति या प्रेमकी इमारत व्यक्ति-विशेषका आश्रय ग्रहण किये बिना नहीं ठहर सकती थी। एक मूर्तिवान् राजा न रहनेपर हमारे हृदयमें राज-भक्तिका उदय नहीं हो सकता था; परन्तु, केवल राज्य-तन्त्रपर भी भक्ति हो सकती है, यह हम नहीं जानते थे और वह इस समय यूरोपीय जातियोंमें ही देखी जाती है। पहले सत्य और ज्ञानका अस्तित्व 'गुरु' नामक मनुष्य-विशेषमें ही रहता था। उन दिनों हम राजाके लिए प्राण देते थे, व्यक्ति-

विशेषके लिए अपना जीवन अर्पण करते थे; किन्तु अब, यूरोपके लोग किसी भावविशेषके या ज्ञानविशेषके लिए प्राणोत्सर्ग कर सकते हैं। वे आफ्रिकाकी बालुकामयी भूमिमें अथवा उत्तर ध्रुवके बर्फीले प्रदेशमें जाकर प्राण दे रहे हैं। किसके लिए ? किसी मनुष्यके लिए नहीं। उच्च भावके लिए, ज्ञानके लिए।

यूरोपमें मनुष्यकी भक्तिके विषय अब प्रेम, ज्ञान और भाव हो रहे हैं; इसलिए, वहाँ व्यक्ति-विशेषका महत्त्व क्रमशः घटता जाता है। यहाँ भी उसी यूरोपीय शिक्षाके प्रभावसे आज सर्वत्र व्यक्तिविशेषकी ओरसे प्रेमका बन्धन धीरे धीरे ढीला होता जा रहा है। आजकल बहुतेरे लोग अपने इस मतके अनुरोधसे पिता-माताको त्याग रहे हैं। इन दिनों प्रत्यक्ष घर-द्वार छोड़कर अप्रत्यक्ष स्वदेशकी ओर बहुतोंका प्रेम दौड़ रहा है,—लोग अनेक सुदूर उद्देश्योंके साधनेमें जीवन बितानेको तत्पर हो रहे हैं। यह भाव पूरे तौरसे फैल गया है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता; पर हाँ, भीतर भीतर यह अपना काम कर रहा है और इसके तरह तरहके लक्षण कुछ कुछ प्रकट भी हो रहे हैं।

इसमें अच्छा और बुरा दोनों ही हैं और यह बात सभी अवस्थाओंके विषयमें कही जा सकती है। सो, जब कि यह परिवर्त्तन बिल्कुल हमारे माथे आ ही पड़ा है तो इसके भीतर जो कुछ अच्छा है उसे यदि ढूँढ़कर निकाल सकें, उसी अच्छे गुणपर यदि अनुराग जमा सकें, तो वह अच्छा गुण क्रमशः बढ़ता जायगा और वह बुरा दोष म्लान होकर नष्ट हो जायगा। नहीं तो, जैसा साधारण दस्तूर है, दोष ही खूब कँटीले होकर सबकी आँखोंके सामने आ जाते हैं और गुण बहुत देरमें ऊपर उठते हैं।

मैं तो अपनी कहानी सुना चुका, अब अपनी कथा तुम आरम्भ करो। तुमने कालेजमें नहीं पढ़ा है, इसका कुछ सङ्कोच न करना; क्योंकि, तुम्हारे लेखसे भी कालेजकी कड़ी गन्ध आ रही है। यह समयका प्रभाव है। सूँघनेसे आधा भोजन होता है, यह असत्य नहीं है। इसलिए आधुनिक समाजमें रहकर जो तुम साँस लेते हो और साँस खींचते हो, उसके साथ कालेजकी भी आधी विद्या तुम्हारे दिमागमें घुस गई है। नाक बन्द तो कर नहीं सकते केवल उसे ऊपरको उठाये रहते हो। तुम्हारी अवस्था ऐसी है कि मानो तुम लहसुन-प्याजके खेतमें वास करते हो और तुम्हारे नाती-पोते ही उसकी एक मोटी ताजी उपज हैं। सो अब, यह गन्ध न तो धोनेसे जानेकी है न माँजनेसे; हाँ, नाती-पोतोंको जड़से उखाड़ कर फेंक सको तो अलबत्तह जा सकती है। पर ये तुम्हारे पके केश तो हैं नहीं, रक्त-बीजके झाड़ हैं।

सेवक
नवीनकिशोर शर्मा

३

बबुआ,

दादाजीसे हँसी-ठट्ठा कर सकते हो, इससे उनकी भक्ति न करोगे यह कोई बात नहीं। नाना दादा आदि तुमसे इतने बड़े हैं कि उनसे हँसी-दिल्लगी भी चल सकती है। पूछो कैसे? तो इस तरह, जैसे एक छोटा बच्चा अपने बापकी देहपर पैर रख देता है तो उससे महाभारत अशुद्ध नहीं हो जाता। किन्तु; इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि उस छोटे बच्चेको पिताके प्रति भक्ति

नहीं है, अथवा वह पिताको अपना आश्रय और अपनेसे बड़ा नहीं समझता है। एक बात और है। सन्तानका शुभाशुभ पिताके ऊपर निर्भर है; इसी कारण, स्वभावसे पिताके स्नेहके साथ शासनका भी सम्बन्ध है और पुत्रकी भक्तिके साथ भयका। पिता कठोर कर्त्तव्य-पथमें पक्का करनेके लिए ही पद पदपर आज्ञा देता है और पुत्रको उसका पालन करना पड़ता है। इसी कारणसे पिता-पुत्रके बीच शासन और शिष्टाचारकी शिथिलता शोभा नहीं पाती है। पर दादाजी इस शासनोचित कठोर प्रेमका भार बालकके पितापर ही छोड़कर केवल मधुर और कोमल स्नेह वितरण करते हैं और पोते निर्भय हो भक्ति और प्रेमके साथ दादाजीके निकट आनन्दपूर्ण हास्यालाप करते हैं। किन्तु, यदि उस हास्यालापमें भक्तिका अंश न हो तो वह बेअदबी और कुशीलतासे भी अधम है। तुम्हें इतनी बातें कहनेकी आवश्यकता न थी, पर तुम्हारी चिट्ठीकी टेढ़ाई देखकर तुम्हें कुछ सावधान कर देना पड़ा है।

शाबाश बाबू, आजकल तुम बड़ी बड़ी बातें बनाना सीख गये हो। अब तो एक बात मुँहसे निकालकर तुमसे दस बातें सुननी पड़ती हैं। इसपर भी यदि तुम लोगोंकी सब बातें समझ सकता तो शायद जीको उतनी चोट नहीं लगती। बहुधा ऐसा देख पड़ता है कि भावोंमें मेल रहनेपर भी भाषाकी विभिन्नतासे आपसमें मत-भेद हो गया है। न मालूम, मैं बूढ़ा आदमी तुम्हारी सब बातें समझ सका या नहीं, परन्तु, जैसा मैंने समझा है उसीके अनुसार उत्तर देता हूँ।

स्व-काल और पर-काल, यह एक नई बात तुमने छेड़ी है। पर-काल तो खैर नई चीज नहीं है,—सामनेका एक जोड़ा दाँत टूटनेके

बादसे मैं भी उस कालकी बातें सोचने लगा हूँ; पर यह स्व-काल क्या वस्तु है ?

समयकी भी क्या कोई स्थिरता है ? हम क्या केवल काल-स्रोतमें बह जानेको आये हैं कि पतवार छोड़कर हाथपर हाथ धरे बैठे रहें ? क्या महत् मनुष्यत्वका आदर्श काल-स्रोतके बीच विशाल पर्वतकी भाँति कालको अतिक्रम करके नहीं रहता है ?

हम परिवर्त्तनोंके बीचमें रहते हैं। इसीलिए हमें एक स्थिर लक्ष्यकी ओर ध्यान रखना और भी आवश्यक है। नहीं तो, कुछ समयमें कुछ भी अपने रूपमें न रह जायगा—नहीं तो हम परिवर्त्तनके गुलाम हो जायँगे, हेर-फेरके खिलौने बन जायँगे। तुमने जो लिखा है उससे तो परिवर्त्तन ही प्रभु मालूम होता है और काल ही कर्त्ता जान पड़ता है,—या यों कहो कि घोड़ेको ही तुम्हारे विचारमें सम्पूर्ण स्वाधीनता है, सवार उसके अधीन है। कालके प्रति भक्तिको ही तुमने सार माना है; परन्तु, मनुष्यत्व और ध्रुव आदर्श-विषयक भक्ति उससे कहीं बढ़कर है।

यह कहनेका साहस कौन कर सकता है कि मनुष्य-जाति पर प्रेम, पिताके प्रति भक्ति और पुत्रपर स्नेह,—केवल परिवर्त्तनशील क्षुद्र समय-विशेषका धर्म है ? इस धर्मका सिर सभी समय ऊँचा रहता है। इसे तुम बीसवीं सदीकी धूल उड़ाकर नजरोंसे छिपा सकते हो, परन्तु स्वयं इसे धूलकी नाईं फूँककर उड़ा नहीं सकते।

यदि सचमुच ही तुमने देखा है कि आजकल कोई भी व्यक्ति पिता-माताकी भक्ति नहीं करता; अतिथिकी सेवा नहीं करता,

पड़ौसियोंकी सहायता नहीं करता, तो इस कालके लिए अफसोस करो; समयकी दुहाई देकर अधर्मको धर्म कहकर मत चलाओ।

भूत और भविष्यतकी ओर देखकर वर्त्तमानको नियमबद्ध करना पड़ता है। यदि इच्छा हो तो आँखें बन्द कर दौड़नेका सुख अनुभव कर सकते हो; परन्तु शीघ्र ही सिर फूटने और बदन टूटनेका भी मज़ा पा जाओगे।

तुमने लिखा है कि पुराने समयमें हमारी भक्ति और प्रीति व्यक्ति-विशेषकी ओर झुकती थी, भावकी ओर नहीं। व्यक्तिके प्रति भक्ति और प्रीति करना कोई बुरी बात नहीं है, बल्कि बहुत अच्छी है, इसलिए हमारे समयमें जो व्यक्ति-गत भाव बलवान् था उसके लिए हम लज्जित नहीं है। किन्तु, इसी आधारपर यदि तुम यह कहने लगो कि भावके ऊपर हमारी भक्ति न थी, तो मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता। हमारे समयमें दोनों ही प्रकारकी भक्ति थी और दोनों आपसमें मेलसे रहती थीं। एक उदाहरण लो। हमारे देशमें जो पति-भक्ति या पति-प्रीति थी (शायद अब भी है), वह क्या थी? वह केवल व्यक्ति-विशेषके ऊपर ही प्रीति अथवा भक्ति नहीं थी; वह व्यक्ति-विशेषको अतिक्रम करके भी वर्त्तमान थी,—वह 'पतित्व' नामक जो भाव-गत अस्तित्व है उसीके प्रति भक्ति थी। व्यक्ति-विशेष उपलक्ष्य-मात्र था, मुख्य पतित्व ही था। इसी कारण व्यक्तिके भले-बुरे होनेसे भक्तिमें घटा बढ़ी नहीं होती थी। सब स्त्रियोंके पति बराबर ही पूज्य थे। यूरोपीय स्त्रियोंकी भक्ति या प्रीति व्यक्ति विशेषमें ही प्रस्थापित है, भावतक नहीं पहुँचाती। इसी कारण वहाँ पति नामक व्यक्ति-विशेषके गुण-दोषोंके अनुसार उनकी भक्ति और प्रीति नियमित होती है। इसीसे वहाँ विधवा-विवाहमें दोष नहीं है। वहाँकी

स्त्रियाँ भावसे विवाह नहीं करतीं, व्यक्तिसे विवाह करती हैं; और इस हेतु, व्यक्तिका अन्त होनेपर पतित्वका भी अन्त हो जाता है। हमारे देशके अधिकांश व्यक्तिगत सम्बन्ध इस प्रकार सुगभीर भावोंपर ही स्थिर हैं।

केवल व्यक्तिगत सम्पर्क ही क्यों, और विषयोंको भी देखो। हमारे ब्राह्मणोंने क्या समाजहीके हितके लिए समाज-त्याग नहीं किया है? राजाओंने क्या धर्मके लिए बुढ़ापेमें राज्य नहीं छोड़ा है? यरोपीय राजा बिना धक्के खाये क्या कभी ऐसा करते? ऋषियोंने क्या ज्ञान और अमरत्वके लिए संसारके सब सुख नहीं त्यागे हैं? रामचन्द्रने क्या पिताकी प्रतिज्ञा रखनेके लिए युवराजत्वका त्याग नहीं किया? सत्यकी रक्षाके लिए हरिश्चन्द्रने क्या स्वर्ग नहीं छोड़ा? पर-हितके लिए क्या दधीचिने अपनी हड्डियाँ दान नहीं कीं? कौन कहता है कि कर्त्तव्य अर्थात् भाव-मात्रके लिए आत्मत्याग करना हमारे देशमें न था? अन्ध आसक्तिके कारण जिस प्रकार कुत्ते अपने स्वामीके पीछे दौड़ते हैं क्या सीता भी वैसे ही रामके पीछे पीछे वन गई थी? किसी उच्च महान् भावके पश्चात् जिस प्रकार मनुष्य निर्भय चित्तसे विपदा और मृत्युके मुँहमें धँसता है, उसी भावसे सीता रामकी अनुयायिनी हुई थी।

खैर, यह स्वीकार करना पड़ता है कि ये सब बातें हम तुम्हारी उम्रमें नहीं समझ सकते थे; किन्तु तुम बहुत-सी पेचीली बातें समझ सकते हो और इसीसे मुझे इतना लिखना पड़ा है।

आशीर्वादक,

षष्ठीचरण शर्मा

चरणोंमें प्रणाम ।

दादाजी, तुम्हारी चिट्ठियाँ क्रमशः पेचीली होती जाती हैं। इनका मतलब मेरी समझमें ठीक ठीक नहीं बैठता। कहाँ रामचन्द्र, कहाँ हरिश्चन्द्र, कहाँ दधीचि; इतनी दूर मेरी दृष्टि नहीं जाती। तुम्हीं तो कहते हो कि हम लोगोंमें दूरदर्शिता नहीं है, अतः दूरकी बातोंको दूर कर, निकटकी बातें चलाना ही ठीक है।

इस विषयमें मुझे अणुमात्र भी सन्देह नहीं रहा कि हम एक ऐसी बड़ी जातिके मनुष्य हैं जिसकी बराबरी करनेवाली दूसरी जाति सारे संसारमें नहीं मिल सकती। वेद-वेदान्त, आगम-निगम, इतिहास-पुराण,—सबसे इस बातके अखण्डनीय प्रमाण मिलते हैं। हमारे यहाँ पहले बेलून था, रेलगाड़ी थी, और स्टाइलोग्राफ पेन भी था जिससे गणेशजीने महाभारत लिखा था! डारविनके बहुत आगे हमारे पूर्व-पुरुषोंने अपने पुरखोंको वानर माना था। आधुनिक विज्ञानके सारे सिद्धान्त शाण्डिल्य, भृगु और गौतमको पूर्णतया विदित थे,—यह सब मैंने माना; किन्तु, इससे यह नहीं हो सकता कि हम केवल अपने कुल-गौरवपर फूले रहें, अपने प्राचीन पूर्वजोंके नामपर ही धूनी रमाये बैठे रहें, और वर्तमानके साथ कोई सम्बन्ध न रक्खें। यह कोई बात नहीं कि लड़कपनमें एक बार खीर और मोहनभोग खाया था इसलिए अब जीवन-भर दाल-भातको तुच्छ समझते रहें। यह बड़ा दुःखका विषय है कि हमारा वैदिक और पौराणिक युग बीत गया; परन्तु, अब जितनी जल्दी हो सके इस दुःखको दूर कर वर्तमान युगके कामोंमें लग जाना ही उचित है।

मैंने जब लिखा था कि हमारे देशके लोगोंकी भक्ति भावकी ओर नहीं है,—केवल व्यक्ति-विशेषके प्रति आसक्ति है, उस समय रामचन्द्र, हरिश्चन्द्र और दधीचिकी कथाओंपर मेरा ध्यान भी न गया था। कीड़ोंकी तरह पुरातत्त्व खोद निकालनेका मुझे उत्साह नहीं है। मैं तो अपेक्षाकृत आधुनिक लोगोंकी ही बातें कहता हूँ। तर्क-वितर्क करनेकी इच्छाको थोड़ी देर दूर रखकर एक बार सोच कर तो देखो, कि हमारे देशमें कितने मनुष्य उच्च भावको उपन्यासकी बात न समझकर, सत्य मान, विश्वास रख, उसीके लिए अपना जीवन अर्पण करते हैं ! यह दल और वह दल; हम, तुम, और अमुक;—बस यही करते करते तो हमारे दिन बीत जाते हैं। मेरे और अमुकके मतलबके कामको छोड़ देशका कोई और सदनुष्ठान भी हो सकता है, ऐसा कभी ख्यालमें भी नहीं आता है। इसीलिए, हम अपने अपने अभिमानमें मस्त पड़े हैं। मुझे कोई ऊँचा पद नहीं मिला है, इस कारण मैं अमुक सभामें न रहूँगा; इस कार्यमें मेरी सम्मति नहीं मानी गई, इसलिए मैं इस काममें हाथ न डालूँगा; उस समाजके सेक्रेटरी अमुक हैं, इससे मेरा उसमें रहना शोभा नहीं पाता;—यही सब सोच सोच कर हम घुटा करते हैं। हर बातमें मान और लज्जाका भूत सिरपर सवार रहता है। मेरी एक बात भी यदि न मानी जाय तो मेरे लिए यह अपमान सहना कठिन हो जाता है। वृत्ताकर तोंद फुलाकर और चारों ओर नौकरों और खुशामदियोंको बैठाकर जो शनैश्चर ग्रहकी नाईं विराज रहा है, आज वही तो हमारी दृष्टिमें महान् पुरुष है। उदारताकी सीमा पेटके चारों ओर तक ही समाप्त है। हमारी उदारता देशव्यापी और स्थायी नहीं है। और तो और हम ऐसे उदार महत्वका विश्वास तक नहीं कर सकते हैं। यदि

देखते हैं कि कोई व्यक्ति रुपये पैसेकी ओर अत्यधिक ध्यान न देकर कुछ समय देशकी सेवामें भी लगता है तो हम उसे ढोंगी कहते हैं। हम कहते हैं कि अमुक व्यक्ति दल-गठन करनेको या नाम निकालनेको, अथवा गुप्त रीतिसे धन उपार्जन करनेको इस कार्यमें प्रवृत्त हुआ है,—यदि स्पष्ट ऐसा नहीं कह सकते तो इतना जरूर कहते हैं कि उसका कोई विशेष अभीष्ट या उद्देश है।

यह सब सुनकर ही तो मैंने कहा था कि हम व्यक्तिके लिए तो प्राणतक न्योछावर कर सकते हैं, किन्तु महान् भावके लिए एक पैसा-कौड़ी भी नहीं दे सकते। हम केवल घरमें बैठकर लम्बी-चौड़ी गप्पें हाँक सकते हैं, बड़े लोगोंकी नकल कर सकते हैं और हुक्केके लम्बे लम्बे दम खींचकर ताश खेल सकते हैं। हमारा भावी क्या है, बस हम यही सोचते हैं। तो भी हमारा अहंकार-अभिमान दिन दिन बढ़ता ही जाता है। हम पूर्ण निश्चय कर बैठे हैं कि हम सारी सभ्य जातियोंके समकक्ष हैं। हम बिना पढ़े ही पण्डित हैं, बिना लड़े ही वीर है, अपने ही मुहँसे सभ्य हैं, केवल चालाकीसे पेट्रियट (देशभक्त) हैं,—हमारी जिह्वाके रासायनिक प्रभावसे जगतमें जो घोर विघ्न उपस्थित होगा, बस, हम सर्वदा उसीकी प्रतीक्षामें रहते हैं। सारा संसार भी मानो उसी ओर साश्चर्य देख रहा है। दादाजी, कहो तो अब रामचन्द्र, हरिश्चन्द्र और दधीचिकी कथा छेड़नेका क्या फल है? यह हमारी तप्त वाचालतामें केवल फोड़न देना है। इससे और क्या होना-जाना है!

मुझे आशा है कि अँगरेजी शिक्षाके प्रभावसे यह संकीर्णता हमारे हृदयसे धीरे धीरे दूर हो जायगी। अतः इस शिक्षाकी ओर

विराग उपजाकर, इसका भीतरी उत्कर्ष देखनेकी राह बन्द कर देना मेरी समझमें हमारे लिए मंगलजनक नहीं प्रतीत होता है।

सेवक,

नवीन किशोर शर्मा

प्रश्नावली

१ निम्नलिखित शब्दोंके अर्थ लिखो और वाक्योंमें प्रयुक्त करो—
अदब-क़ायदा, दस्तूर, पिपीलिका, कर्तव्य-पाश, रीति-रस्म, दंशनसुख, वाञ्छनीय, असाध्य, काल-स्रोत, अतिक्रम।

२ निम्नलिखित मुहाविरोंका प्रयोग करो—
महाभारत अशुद्ध होना, बातें बनाना. पतवार छोड़ना, हाथपर हाथ धरे बैठना।

३ पिछले पत्रका उत्तर अपनी तरफसे लिखो।

४ चिट्ठी-पत्रीमें ‘ तुम ’ आदि निकटता व्यक्त करनेवाले शब्दोंका प्रयोग कब करना चाहिए तथा ‘ आप ’ आदि सम्मानवाचक और दूरी बतलानेवाले शब्दोंका प्रयोग कब करना चाहिए ?

५ अपने किसी गुरुजनको एक सभ्य और उचित परिहासपूर्णपत्र लिखो।

सदाचार और प्राकृतिक चुनाव

[चार्ल्स डारविन युगप्रवर्तक तत्त्ववेत्ता माने जाते हैं। जिन सिद्धान्तोंका उन्होंने प्रवर्तन किया है, यद्यपि उनके ब्यौरेके सम्बन्धमें बहुतसे विद्वान् सहमत नहीं हैं परन्तु विकासवादकी उनकी विचार-धाराको सभी आधुनिक विज्ञानों, शास्त्रों और दर्शनोंने अपना लिया है। उनका कथन है कि प्रत्येक जीवधारी जीवित रहना चाहता है और आगे अपनी सन्तान-परम्परा छोड़ जाना चाहता है। इसके लिए वह अनेक आपत्ति विपत्तियोंका सामना करता है; जीवन बनाये रखनेके लिए अपनेसे कमजोर प्राणियोंका भक्षण करता है तथा शक्तिशालियोंसे अपनी रक्षा करता है। इसीको ' जीवन-कलह ' कहते हैं। इस जीवन-कलहमें प्रकृति कमजोर और अयोग्य व्यक्तियोंको तथा जातियोंको नष्ट कर देती है और योग्यतम व्यक्तियों और जातियोंको जीवित रखकर उनका विकास करती है। प्रकृतिके इस कार्यको ही ' प्राकृतिक चुनाव ' कहते हैं।]

डारविनने अपनी ' डिसेण्ट आफ मेन ' (मनुष्यकी परंपरा) नामक पुस्तकमें यह दिखानेकी चेष्टा की है कि मनुष्यकी उन्नतिमें सदाचारने कहाँ तक सहायता की है। उसके अनुसार हर जगह, मनुष्यसे लेकर छोटेसे छोटे जीवोंमें भी, ' जीवन-कलह ' (स्ट्रगल फॉर ऍक्जिस्टेन्स) विद्यमान् है। जो जीव अपनेको सबसे अधिक अपनी परिस्थितियोंके अनुकूल बना सकता है और जीवनके नियमोंका पालन करता है वह सबसे अधिक जीनेके योग्य है, वही अपनी सन्तति छोड़ जाता है। अयोग्य जीव नष्ट हो जाते हैं। हर एक जाति उन गुणोंको, जिनके द्वारा वह दूसरी जातियों (Species) से अधिक बलवती होती है, परम्परागत नियमोंके द्वारा अपने वंशजोंमें आरोपित और दृढ़ करती है।

केवल शारीरिक बलमें मनुष्य हाथी और भैंसेका सामना नहीं कर सकता, तो भी अपनी बुद्धिके कारण वह उनसे बलवान् बना

हुआ है। वह भाला, तलवार और बन्दूकका आविष्कार करता है और उन्हें परास्त करता है। इसी प्रकार, लड़ाईमें भी केवल उसी जातिकी विजय नहीं होती जिसकी सेना असंख्य हो, या जिसकी फौज हृष्ट पुष्ट हो, वरन् उस जातिकी होती है जिसके अफसर योग्य हों और जिसके लड़ाईके तरीके उत्तम और नूतन हों।

डारविन आगे बढ़कर यह भी बतलाते हैं कि सदाचारयुक्त होनेसे हमें जीवन-कलहमें मदद मिलती है। इस प्रतिद्वन्द्विताओंमें एक सदाचारयुक्त जाति दूसरी तदाचार-हीन जातिको अवश्य पराजित करती है। सच्चरित्रोंकी मदद प्रकृति उसी प्रकार करती है जिस प्रकार अधिक शरीरिक या अतुल मानसिक शक्तिवालोंकी।

ऐसे बहुतसे नियम हैं जिनके सहारे समाज खड़ा है और पुष्ट तथा बलवान् है। यदि कोई समाज-नियमोंका उल्लंघन करेगा,—यदि वह इन सर्वशक्तिमय नियमोंका कुछ भी आदर न करेगा और संसारको केवल क्रीड़ा-स्थल समझेगा, तो समझ लीजिए कि उस समाजको जीवनका रहस्य ज्ञात नहीं है और इस लिए कुछ ही समयमें उसका नाम संसार-पृष्ठपरसे एकदम उड़ जायगा।

डारविनके मतपर लोग एक दूसरे प्रकारकी भी टीका करते हैं। अकसर कहा जाता है कि प्रकृत्ति बलवानोंकी रक्षा करती है और दुर्बलोंको रसातल भेजती है। अतएव, बलवानोंको निःसंकोच अपना स्वार्थ साधना चाहिए, और दुर्बलोंको मरनेके लिए छोड़ देना चाहिए। क्योंकि प्रकृतिका यही नियम है और यही उसकी इच्छा भी है। यदि कोई मनुष्य अपनेको शिक्षित बना सके तो अच्छा है, नहीं तो उसे अशिक्षित ही छोड़ दो। अपने पुरुषार्थसे यदि कोई मनुष्य इतना चालाक है कि दूसरेको धोखा दे सकता है, यदि इतना बलवान् है

कि दूसरोंपर अत्याचार कर सकता है, तो उसे ऐसा करने दो, क्योंकि बल और बुद्धियुक्त होनेके कारण यह उसका सामान्य अधिकार है।

यह बात डारविनके मतके विरुद्ध है। निःसन्देह इस प्रकारकी सामाजिक अराजकता एक समय,—संसारके आदि युगोंमें अवश्य विद्यमान् थी; क्योंकि, उस समय हमारी सदसद्विवेकबुद्धि (कॉन्शन्स) जाग्रत नहीं हुई थी। एक सीमाके बाहर सामाजिक उन्नतिके वगैर व्यक्तिगत उन्नति नहीं हो सकती। वे जातियाँ, जिनमें सामाजिक सहानुभूति एकदम नहीं थी, जीती नहीं बचीं और न उन्होंने अपना कोई वंशज ही छोड़ा। वे उन श्रेष्ठ सदाचारयुक्त जातियोंसे जिनकी सामाजिक प्रवृत्ति उन्नत हो चुकी थी, मुकाबिला न कर सकीं और आज भी जो ऐसी जातियाँ बच रही हैं वे असभ्य, जंगली और पशुओं जैसा जीवन व्यतीत करती हैं। उनके शरीर और देशपर आधिपत्य जमाना बलवती जातियाँ अपना अधिकार ही नहीं वरन् अपना कर्तव्य और धर्म भी समझती हैं। जिस प्रकार वनस्पाति और पशु श्रेष्ठ मनुष्यके हित-साधनका यन्त्र बनते हैं, उसी प्रकार नीची जातियाँ भी ऊँची और श्रेष्ठ जातिके सुख-साधनका यन्त्र मानी जाती हैं।

यह अच्छी तरह स्पष्ट है कि जीवन-संग्राममें सदाचारयुक्त जीवोंको सदाचार-हीन जीवोंकी अपेक्षा अधिक योग्यता प्राप्त होती है। एक उदाहरण लेकर देखिए। शान्त-स्वभाव होना सदाचारका एक अंग है। शान्त स्वभावका अर्थ चुपचाप दूसरोंका आघात-अत्याचार सहना नहीं है, वरन् दूसरोंको निरर्थक कष्ट न देनेकी इच्छा रखना, या झगड़ालू और क्रूर-स्वभावयुक्त न होना है। इस बातको आप

स्वयं समझ सकते हैं कि एक शान्त अहिंसक और एक विवादी अत्याचारी निर्दयी मनुष्य : इन दोनोंमेंसे किसकी जान अधिक जोखिममें है ? इसके सिवाय झगड़ालू स्वभाववालोंकी अपेक्षा शान्त स्वभाववाले सन्तान उत्पन्न करनेकी और अपने वंशको जारी रखनेकी योग्यता भी अधिक रखते हैं।

इसी तरह इंद्रिय-संयम भी सदाचारका एक अंग है। असंयमी मनुष्यका शरीर और मन जर्जर हो जाता है, उसकी जवानी, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, सुख और शान्तिका विसर्जन हो जाता है। वह नाना प्रकारकी कठिन बीमारियोंका शिकार बनता है, और अकालमें ही काल-कवलित हो जाता है।

स्त्रियोंके प्रति सद्व्यवहार रखना भी सदाचारकी एक बड़ी आज्ञा है। संयम-हीनता स्त्री और पुरुष दोनोंके लिए बुरी है। वह स्त्रियोंको सन्तान-हीन बनाती है,—यानी प्रकृति उसकी सन्ततिसे घृणा करती है; और यदि ऐसे स्त्री-पुरुषोंके सन्तान होती भी है तो दुर्बल, रोगग्रस्त और लघुजीवी। असंयमी स्त्री पुरुष यदि एकान्तमें छिप कर प्रकृतिके आईनसे विरुद्ध दुष्कर्म करते हैं, तो क्या वे सोचते हैं कि हम प्रकृतिको धोखा दे देंगे ? नहीं नहीं, कदापि नहीं। प्रकृति अन्धी नहीं है। उसकी दृष्टि बड़ी सूक्ष्म और सर्वगामिनी है। वह सब-कुछ देखती है और तुरन्त ही आईनके अनुसार ऐसे लोगोंको सजा देती है। वे निःसत्व होकर पागल हो जाते हैं, सन्तान-हीन हो जाते हैं और उनका जविन क्लेशमय बन जाता है, इसके सिवाय उन्हें जो मानसिक अनुताप और मानसिक यंत्रणायें होती हैं, उनकी तो गणना ही नहीं हो सकती।

अब यदि हम व्यक्तियोंको (अकेले मनुष्योंको) छोड़कर मनुष्य-

समूह तथा समाजोंको देखें तो उपर्युक्त गुणका महत्त्व और भी अधिक स्पष्ट हो जायगा। यह स्वयंसिद्ध है कि जो जाति अधिक इन्द्रिय-संयम रखनेवाली होगी और स्त्रियोंको अपना खिलौना न समझकर उनका सम्मान करेगी, तथा जिस जातिकी विवाह-प्रथा स्थायी और पवित्र होगी, वह दूसरी जातियोंकी अपेक्षा अधिक बलवती और दीर्घजीवी होगी।

अण्डमन द्वीपके आदिम निवासी या जङ्गली वाशिन्दे अपनी स्त्रीकी परवाह उसी समय तक करते हैं जब तक कि उसके बच्चे स्तन-पान करते हैं। इसके बाद वे उसे छोड़ देते हैं और दूसरी स्त्रीको ग्रहण कर लेते हैं। तब त्यक्त स्त्रीको केवल अपना ही नहीं वरन् अपने बच्चेका भी भरण-पोषण करना पड़ता है। क्या प्रकृति इसकी कुछ परवाह नहीं करती? क्या वह सर्वथा उदासीन है? परिणाम, अण्डमन-वासियोंकी जाति शनैः शनैः मृत्युके गालमें घुसती जा रही है। एक अन्वेषकने उनमें केवल एक ही ऐसी स्त्रीको देखा था कि जिसके तीन बच्चे थे। इस जातिके कुछ ही मनुष्य चालीस वर्षकी आयु प्राप्त करते हैं। अब अनुमान कीजिए कि यदि माताएँ भी उतनी ही स्वार्थ-रत हो जायँ जितने कि वहाँके पिता होते हैं, और दूध छोड़नेपर वे भी बच्चोंको उसी प्रकार छोड़ दें जिस प्रकार पिता छोड़ देते हैं, तो यह जाति संसारमें कितने समय तक टिकी रह सकती है? निःस्वार्थताहीसे समाज, जाति या कुटुम्ब जीवित और कायम रहता है।

डारविनने सप्रमाण सिद्ध किया है कि सामाजिक प्रवृत्ति थोड़ी थोड़ी और जानवरोंमें भी विद्यमान् है। छोटी छोटी चिड़ियाँ भी अपने बच्चोंको बचानेके लिए भयानक आपत्तिका सामना करती हैं

और अनेक बार अपनी जान तक खो देती हैं। यदि संसारमें केवल स्वार्थपरता ही होती तो इस भू-पृष्ठपर उन पौधों या उन क्षुद्र कीट-पतङ्गोंके सिवाय, कि जिनके बच्चे जन्म लेनेके साथ ही अपनी फिक्र आप कर सकते हैं और जिनके लालन-पालनकी आवश्यकता नहीं पड़ती, और किसी प्रकारके जीव न बचते। सभी ऊँच श्रेणीके जीवधारी इसी वजहसे जीवित हैं कि आदिमें उनकी खूब रक्षा की गई है और उनका यथेष्ट लालन-पालन हुआ है। मनुष्योंका पशुओंसे इस कारण भेद है कि उनकी सामाजिक प्रवृत्ति पशुओंकी अपेक्षा कहीं बलवती है। डारविनके कथनानुसार जीवधारियोंके उस भागको मनुष्य कहते हैं कि जिसके भीतर बुद्धि, विवेक और निःस्वार्थता परम्पराके नियमोंद्वारा बलवती हो गई हो। इन्हीं गुणोंके कारण मनुष्यको प्रकृतिके और जीवोंपर श्रेष्ठता प्राप्त हुई है। यदि समुद्रकी मछलियाँ और पृथ्वीपरके पशु मनुष्यके समान बुद्धि और सहानुभूतिसे युक्त होते तो क्या उनका पकड़ा और मारा जाना इतना सहज होता? क्या वे मनुष्यके साथ पूरी पूरी बराबरी नहीं कर सकते? हम मनुष्य इस कारण हैं कि हम लोग एक दूसरेकी परवाह करते हैं और वे पशु इस कारण हैं कि उनमें सामाजिकता नहीं है। मौका पड़नेपर प्रत्येकको अपनी लड़ाई आप लड़नी पड़ती है, वे परस्पर प्रेम और सहानुभूतिके सूत्रमें गुँथे हुए नहीं हैं।

एकता ही बल है, यह एक साधारण सिद्धान्त है। प्रतिक्षण प्रतिमुहूर्त, प्रतिघण्टे और प्रतिदिन हम इसे अपनी आँखोंसे देखते हैं। अकेला मनुष्य एक पत्थरके टुकड़ेको भी नहीं उठा सकता, परन्तु बहुतसे मनुष्योंकी बुद्धि और बलके सहयोगसे बड़े बड़े पहाड़

भी विदीर्ण कर डाले जाते हैं। समाज भी इसी एकताका विकास है। सदाचार इस एकताके साधनका उपाय है, अतएव जिस समाजमें जितनी अधिक एकता होगी वह उतना ही अधिक बलवान् होगा।

जीवनके लिए केवल मनुष्य ही नहीं, वरन् जातियाँ भी लड़ा करती हैं और प्राकृतिक चुनावका नियम (लॉ आफ नेचुरल सिलेक्शन) अयोग्य जातियोंका विनाश उसी प्रकार करता है जिस प्रकार अयोग्य व्यक्तियोंका। उन जानवरोंको भी, जो झुण्डों और यूथोंमें रहा करते हैं और मिल-जुलकर शत्रुओंसे अपनी रक्षा या उनपर आक्रमण करते हैं, आपसमें सद्व्यवहार करना पड़ता है और यदि उनका कोई सरदार होता है तो उन्हें उसकी आज्ञा माननी पड़ती है। जब जानवरोंकी यह दशा है तो आप विचार कर सकते हैं कि मनुष्योंको सच्चरित्र होनेकी कितनी आवश्यकता है? यदि किसी जातिके मनुष्य आपसमें सदा हत्या, डकैती और धोखेबाजी किया करते हैं, तो किसी बाहरी शत्रुके न रहनेपर भी वे कितने दिन तक जीवित रह सकते हैं? और यदि कहीं उनका शत्रु भी हुआ तो फिर कितने शीघ्र वे उसके अधीन हो जायँगे? बात यह है कि कोई जाति या परिवार जीता रह ही नहीं सकता यदि उसमें दुराचारकी अपेक्षा सदाचारकी मात्रा अधिक न हो। मानो प्रकृति हमें सच्चरित्र होनेके लिए मज़बूर किया करती है, चाहे हममें सदाचार या धर्म-प्रेम हो या न हो। केवल वे ही जातियाँ जीवित रहती हैं और पूर्ण जीवन प्राप्त करती हैं जिनमें आवश्यकता, सद्व्यवहार, सार्वजनिक-हित-साधनकी इच्छा तथा नियमाधीन रहनेका स्वभाव विद्यमान् हो। दूसरी जातियाँ

जो इन प्राकृतिक शर्तोंको पूरा नहीं करतीं, अवश्य विनाशको प्राप्त होती हैं। डारविन कहते हैं कि जिस जाति या कौममें देश-भक्ति, सद्व्यवहार, आज्ञा-पालन, बहादुरी, दया और सहानुभूतिकी मात्रा बढ़ी हुई है,—जहाँ एक दूसरेकी मदद करनेके लिए सदा तत्परता रहती है—जहाँ लोग सार्वजनिक हितके लिए आत्मोत्सर्गके लिए भी नहीं हिचकते—वह जाति निःसन्देह दूसरी जातिपर विजय प्राप्त करेगी और इसीका नाम 'प्राकृतिक चुनाव' है।

सभ्य जातियोंको सदाचारकी और भी अधिक आवश्यकता है। इसीके कारण संसारमें सभ्य राष्ट्रोंके झण्डे आकाश चूम रहे हैं। डारविनके मतके अबोध अनुवाद करनेवाले हमें अपनी सर्व-जन हितैषिताके रोकने, अपने अनाथालयों और अस्पतालोंके बन्द करने, तथा गरीबों, निराश्रयोंको कोई आश्रय न प्रदान करनेकी सलाह देते हैं, पर यह सभ्यताकी ऊँची सीढ़ीपर चढ़ना नहीं है, वरन् उसके नीचे उतरना और फिरसे जंगली बनना है। यह उन अमेरिकन रेड इंडियनोंका—जो अपने दुर्बल और जर्जर साथियोंको मैदानमें मरनेके लिए छोड़ देते हैं, या उन फिजीयनोंका,—जो अपने माता-पिताके वृद्ध होने या बीमार पड़नेपर उन्हें जीता गाड़ देते हैं, या उन जानवरोंका,—जो अपने जख्मी साथियोंको अपने गिरोहसे बाहर निकाल देते हैं और तड़पा-तड़पाकर उनका प्राण लेते हैं,—अनुकरण करनेके समान है। नहीं, ऐसा कहनेवालोंसे तो बहुत-से जंगली जानवर भी अपने भावों और जज़बातमें कहीं श्रेष्ठ हैं। डारविनने ऐसे हिन्दुस्तानी कौओंका जिक्र किया है जो अपने दो-तीन अन्धे साथियोंका भरण-पोषण करते थे। डारविनने स्वयं अपनी आँखोंसे एक ऐसे कुत्तेको देखा था जो एक

टोकनीमें पड़ी हुई बीमार बिल्लीके समीपसे उसके मुँहको दो-एक बार चाटे बिना कभी आता-जाता न था। यदि तुम इस सामाजिक प्रवृत्तिका विनाश कर दो, दया और सहानुभूतिके स्रोतको शुष्क कर डालो, तो देखोगे कि बहुत जल्द समाजका विच्छेद हो जायगा, समाज ढीला पड़ जायगा, उसके अंग शिथिल हो जायँगे। अराजकताका साम्राज्य हो जायगा, और समाज और जातिके निर्माणका काम फिर जड़से शुरू करना पड़ेगा। युद्धमें,—अन्तर्जातीय प्रतिद्वन्द्वितामें सदाचारशून्य जातिका अवश्य विनाश होगा। सामाजिक जातिके देश-प्रेम, जाति-प्रेम, उत्साह और ऐक्यके मुकाबलेमें ऐसी जातियोंको अवश्य नीचा देखना पड़ेगा। सदाचार ही एक ऐसी आकर्षण शक्ति है जो समाजको स्थिर और कायम रक्खे हुए है। प्राण-पखेरूके उड़ जानेसे शरीरमें किसी आकर्षणके बाकी न रहनेपर जैसे अणुओं और परमाणुओंसे बना हुआ संघाटित शरीर एकदम छितरा जाता है, वही दशा सदाचार-विहीन समजकी भी होती है।

इसमें किसीको भी सन्देह न होगा कि प्राचीन मिस्र, खुल्द, बेबि-लौन, असीरिया और फारसका विनाश इसी कारण हुआ कि वे जीनेके योग्य न थे। इसी कारण संसार-विजयी रोम जंगलियोंद्वारा परास्त हुआ, प्राचीन यूनानका जीवनान्त हुआ, और इसी कारण हमारी भी वर्तमान अवनति हुई। स्पार्टा बुद्धिमें दूसरे यूनानी राष्ट्रोंसे श्रेष्ठ नहीं था; परन्तु, वह केवल अपनी एकता और राष्ट्रीय नियमोंके सदा आदर करनेहीके कारण थोड़े दिनोंतक यूनानमें अपना मस्तक सबसे ऊँचा किये रहा। इस्लामके इतिहासमें भी यही बात हुई। केवल एकता और सहधर्मियोंके प्रति अनन्त प्रेमके कारण ही इसलामने एक समय तहलका मचा दिया

था और युद्धमें अपनेसे अधिक श्रेष्ठ और उन्नत जातियोंके छक्के छुड़ा दिये थे। विद्या और बुद्धिमें एक प्राचीन आर्थीनियन (=एथेन्स-निवासी) आधुनिक अमेरिका और इंग्लैण्डके आदमियोंसे उतना ही बढ़ा हुआ था जितना हब्शियों (नीग्रो) से आजकलके अँगरेज़ और अमेरिकन। तो फिर कला, शिल्प और सौन्दर्य्यकी खान इस अलौकिक जातिकी मृत्यु क्यों हुई? सामाजिक दुराचारके कारण, खुले शब्दोंमें विवाह प्रथाके कमजोर होने एवं उसके उठ जानेके कारण और वेश्याओंके एकाधिपत्य लाभ करनेके कारण।

प्राचीन ग्रीसमें वेश्याओंको जो प्रधानता प्राप्त हुई थी, वह और किसी देशमें नहीं हुई। वहाँके समाजमें उनका जो स्थान था, उनके पास जो धन-वैभव था और उनमें जो गुण तथा सौन्दर्य था वह हमारे लिए कल्पनातीत है। ग्रीक-कलाकी जान वेश्यायें ही थीं। यूनानी मूर्ति-तक्षक उनको लक्ष्य करके देवियोंकी मूर्तियाँ गढ़ा करते थे। ग्रीसके प्रसिद्ध कवि पिण्डार और साइमोनाइडीज वेश्याओंकी स्तुति करते थे। पिरिक्लीजकी प्रेमिका अस्पेसिया केवल अपने सौन्दर्यके लिए ही नहीं, बल्कि अपने गुणोंके लिए भी प्रसिद्ध थी। अन्य दार्शनिकोंकी तरह सुकरात (साक्रेटीज) भी उनकी मजलिसोंमें जाया करता था। डायोटिमा नामक एक दूसरी वेश्यासे स्वयं सुकरातने शिक्षा पाई थी।

वेश्याओंकी इस प्रधानताका, उनके वैभवका और उनके प्रति लोगोंकी असीम श्रद्धाका प्रभाव ग्रीस देशपर अच्छा न पड़ा। वैवाहिक बन्धन नीची दृष्टिसे देखा जाने लगा। कौटुम्बिक जीवनको छोड़कर लोग कुलटाओं और वेश्याओंके साथ जीवन बिताने लगे। विवाहित लोग भी खुल्लमखुल्ला वेश्यायें रखते थे। बुरे दिनोंके आनेके

पहले रोमकी भी यही शोचनीय अवस्था हुई थी। विवाह-बन्धन अत्यन्त ढीला हो गया था। सेनेका कहता है कि रोममें ऐसी भी स्त्रियाँ थीं जो वर्षोंको पतियोंकी संख्यापरसे गिना करती थीं। सेंट जेरोमने एक ऐसी स्त्रीका वृत्तान्त लिखा है जो अपने तेईसवें पतिके साथ रहती थी और अपने पतिकी इक्कीसवीं स्त्री थी! रोमका नैतिक अधःपात यहाँ तक हो चुका था कि टाइबेरिसके समयमें एक ऐसा कानून बनानेकी ज़रूरत हुई जिससे उच्च कुलकी रमणियाँ अपना नाम वेश्याओंके रजिष्टरमें न लिखा सकें—वेश्यायें न बनें। अतः कोई आश्चर्य नहीं यदि रोम जैसे प्रतिभाशाली और शक्तिसम्पन्न साम्राज्यका विनाश हो गया।

प्राकृतिक चुनावका नियम पहले विद्यमान् था और भविष्यमें भी रहेगा। अपराधियोंको दण्ड देनेमें प्रकृति जरा भी सङ्कोच नहीं करती। प्रकृति उच्च और गम्भीर स्वरके साथ चिल्ला चिल्ला कर कह रही है कि, "वह जाति जीवित नहीं रह सकती जिसके कि शासक विलासितामें डूबे हुए हैं, इन्द्रिय-परतामें तर-बतर हैं, दुर्बलों, दरिद्रों, और अनाथोंसे घृणा करते हैं। न्याय, धर्म और सदाचारके अतिरिक्त मैं किसी भी देश या जातिकी परवाह नहीं करती। ऐ संसारकी वर्त्तमान जातियो, यदि तुम मुझे ध्यानमें न रक्खोगी, तो बाबिलोन, यूनान और रोमकी तरह तुम भी सदाके लिए अन्तर्हित हो जाओगी। मैं न्याययुक्त, धार्मिक और पुण्यात्मा राष्ट्र चाहती हूँ। मुझे सीधे सादे स्वभावके, स्वच्छ हृदयके, निर्विकार दिलके तथा जुबानके सच्चे मनुष्य प्रिय हैं। मैं ऐसे लोगोंको प्यार करती हूँ जिन्हें सत्य जीवनसे भी प्यारा है। ऐ मनुष्यकी सन्तानो, क्या

तुममें मुझे तृप्त करनेकी शक्ति है? यदि तुम मुझे सन्तुष्ट कर सकोगे तो मैं तुम्हें सदाके लिए अजर, अमर और अजेय कर दूँगी; जब तक सूर्य्यमें ताप, चन्द्रमामें ठंडक, नभमें नक्षत्र, और आकाशमें नीलिमा है,—नहीं नहीं, जब तक कालका स्रोत बहता है तब तक मैं तुम्हारी यशःकीर्ति और सुख्यातिकी दुन्दुभी बजाती रहूँगी।"

प्रश्नावली

१ निम्नलिखित शब्दोंके अर्थ लिखो और उन्हें वाक्योंमें प्रयुक्त करो—सदसद्विवेकबुद्धि, सर्वजनहितैषिता, मूर्ति-तक्षक, जज़बात, इन्द्रियपरता।

२ चार्ल्स डारविनके सम्बन्धमें क्या जानते हो?

३ 'जीवन-कलह' और 'प्राकृतिक चुनाव' किसे कहते हैं? इसे अच्छी तरह उदाहरणसहित समझाओ।

४ सदाचारके कौन कौन अंग हैं? उनका जातीय जीवनपर क्या प्रभाव पड़ता है? आजकल भारतकी विभिन्न जातियोंमें ऐसे कौनसे रिवाज हैं जिनसे उनकी उन्नतिमें बाधा पहुँचती है और जिनके कारण 'जीवन-कलह' में वे अन्य जातियोंके मुकाबिले पिछड़ रही हैं?

५ कुछ लोगोंका कथन है कि भारतवर्षका पतन अहिंसा, दया आदि कोमल वृत्तियोंके अत्यधिक प्रचार होनेसे हुआ, और कुछ लोगोंका कथन है कि समाजमें अत्यधिक विलासिता, स्त्री-जातिकी घोर उपेक्षा और अपमान, अनैक्य, तथा ऐसे ही असदाचारके फैलनेसे हुआ। इनमेंसे तुम्हें कौन-सा मत अधिक सत्य प्रतीत होता है? इसपर एक छोटा-सा निबन्ध लिखो।

स्मृतिज्ञानकीर्ति

[एक भारतीय पंडितकी सच्ची कहानी जो ईसवी सन् १०३० के लगभग भारतके संस्कृत ग्रंथोंका भोट भाषामें अनुवाद करनेके लिए तिब्बत गये थे। पद्मरुचि नामका एक दुभाषिया विद्वान् इन्हें आमंत्रित करके अपने साथ ले गया था; परन्तु वह रास्तेमें,—नेपालमें ही मर गया और इन्हें भोट भाषा सीखनेका कोई साधन नहीं रह गया। फिर भी ये हिम्मत न हारे और तिब्बत गये। वहाँ इन्होंने भोट भाषा सीखनेके लिए अपार कष्ट सहन किये। आठ वर्ष तक तो ये भेड़ें चरानेका काम करते रहे। उस समय सारे भारतवर्षमें उनकी जोड़का कोई विद्वान नहीं था। उन्होंने बहुतसे ग्रंथोंके भोट अनुवाद किये और अनेक स्वतंत्र ग्रंथोंकी भी रचना की। पूर्वीय तिब्बतके एक स्तूपमें अब भी उनका मृत शरीर सुरक्षित है।]

१

दिनके दस बज चुके हैं। रातकी वर्षाके बाद आज-मेघरहित आकाशमें सूर्यका प्रखर प्रकाश फैल रहा है। पत्थरोंसे शून्यप्राय ता-नग्के पहाड़ोंपर घासकी हरी-सी मखमल बिछी हुई दूरसे दिखाई दे रही है जिसमें अगणित चँवरियाँ (तिब्बतकी एक जातिकी गायें) और भेड़-बकरियाँ चर रही हैं। नीचेकी ओर दूर एक विस्तृत उपत्यकामें ब्रह्मपुत्रकी रुपहली पतली-सी धार भूलभुलैया खेलती हुई जा रही है। उससे अति दूर, ऊपरकी ओर हटकर, एक नालेमें कितने ही चँवरीके बालोंके काले काले तम्बू लगे हुए हैं जिनकी फटी छतोंसे काला धुआँ आकाशमें उड़कर दूर तक फैल रहा है। इन तम्बुओंके पास बँधे हुए कुत्तोंके समय समयपर भूँकनेके सिवा और कोई मानव-चिह्न दिखाई नहीं पड़ता।

तम्बुओंके पीछेकी पहाड़ी रीढ़पर बहुत दूर दक्षिणकी ओर एक तरुण बैठा हुआ है। अपने लम्बे शरीर, असाधारण गौर वर्ण, भूरे केश और बड़ी बड़ी आँखोंके कारण, मैले पट्टीके चोगे और चमड़ेके

जूतेके रहते भी, वह भोट देशीय नहीं जान पड़ता। युवकके एक ओर बकरीके बालोंका एक मोटा झोला, डंडा और गोफन पड़ा हुआ है, दूसरी ओर रीछ जैसा बालों और पीली आँखोंवाला एक भीमकाय काला कुत्ता बैठा हुआ है जो रह-रहकर सहलानेकी इच्छासे अपनी गर्दनको युवककी गोदमें डाल देता है। किन्तु, चिन्तामग्न युवक आज उधर ध्यान ही नहीं देता। उसके सामने कुछ कदमोंपर सफेद ऊनी छुपा (कनटोप जैसी टोपी) पहने झोली और गोफन लिये एक दस वर्षकी लड़की खड़ी है।

लड़कीने कुछ और आगे बढ़कर कहा, "अबू ने-ले×तुम पहले गीत गानेके लिए कितना आग्रह किया करते थे! एक गीत गाओ न। एक छोटा-सा गीत सुनाओ। आज मेरे तीन गीत गानेपर भी तुम ऐसे चुपचाप क्यों हो?"

युवक अब भी चिन्तामग्न रहा।

लड़की उदास होकर बोली, "तुम पिताकी उन दो-चार गालियोंसे तो दुखी नहीं हो गये? काममें ग़फ़लत होनेपर मालिक ऐसा किया ही करते हैं, मारते भी हैं किन्तु नौकर उनका खयाल थोड़ा ही करते हैं!"

युवकने अपनी बड़ी बड़ी आँखोंको ऊपर उठाया और उसे डोल्-मा (उसके मालिककी लड़की) के गीतका स्वागत न करनेका पछतावा होने लगा। उसे ता-नग्में नौकरी करते एक साल हो गया था। इस सारे समयमें डोल-मासे बढ़कर सहृदय मित्र दूसरा उसे नहीं मिला था। ता-नगमें आते समय उसका भोट भाषाका ज्ञान नहीं-सा था। उसके सिखानेमें डोल-मा गुरु बनी। एक बार बीमार पड़ जानेपर घर-भरमें डोल्-मा ही थी जो हर समय पास मौजूद रहकर उसकी

* चरवाहीके दिनोंमें स्मृतिज्ञानका यही नाम था।

सेवा-शुश्रूषामें लगी रहती थी। एक अपढ़ ग्रामीण कन्या होते हुए भी डोल्-माके बर्तावमें एक प्रकारकी मधुरता थी। अपने अनेक देश-वासियोंकी भाँति, यद्यपि डोल्-माने भी अभी तक दीर्घकालसे जल स्पर्श कर अपने शरीरको अपवित्र नहीं होने दिया है, तो भी, चेहरा या हाथ,—जहाँसे भी मैलकी एक पपड़ी निकल गई है वहाँका सुन्दर गुलाबी रंग चमकने लगा है। गोल होनेपर भी डोल्-माका चेहरा उतना चिपटा नहीं है, उसकी आँखें भी अपेक्षाकृत अधिक खुली हुई हैं। नाक-भी एक-दम कपोल-शायिनी नहीं है। इन बातोंके कारण डोल्-माका मुख और शरीर सुन्दर मालूम होता है।

युवकने बड़े प्रयत्नसे मुखपर हँसीकी रेखा लाकर कहा—

" नहीं, डोल्-मा, कोई बात नहीं है। आज पहाड़ोंकी हरी उपत्यकाको देखकर मुझे अपनी जन्म-भूमिकी याद आ गई है। हमारे यहाँ पहाड़ तो नहीं हैं, किन्तु मैदानकी हरियाली प्रायः सालभर देखनेमें आती है। "

"अबू-ने-ले, क्या तुम्हारे यहाँ हमारी चङ्-पो जैसी नदी भी है?"

" इतनी ही दूरपर और इससे बड़ी। लेकिन पहाड़ न होनेसे हम उसे देख नहीं सकते। "

" पहाड़ न होनेपर तुम्हारी चँवरियाँ और भेड़ बकरियाँ कहाँ चरती होंगी ? "

" चँवरियाँ हमारे यहाँ नहीं हैं। "

" ओह, तब तो तुम्हारे यहाँके लोग बहुत ही दुःखी होंगे। उनको तम्बू और रस्सी बनानेके लिए बाल न मिलते होंगे। उनको दूध, मक्खन और सुखाया हुआ पनीर नसीब न होता होगा। वे बेचारे अपनी पीठोंपर ही बोझ ढोते होंगे! "

स्मृतिने डोल्-माकी बातोंका खण्डन नहीं किया। वे अपनेको संस्कृतिके उसी तलपर रखना चाहते थे। वे बोले, "हाँ होगा डोल्-मा, हम लोग बड़े दुखी हैं, गरीब हैं। तभी तो मैं तुम्हारे यहाँ नौकरी करनेके लिए आया हूँ।"

"अबू, क्या कभी तुम्हें अपने-मा-बाप याद आते हैं?"

"बहुत कम।"

"तुम्हारे कितने बाप हैं?"

"एक।"

"ओह, तो बेचारेको अकेले ही खेतका काम करना पड़ता होगा; भेड़ोंकी चरवाही और बाजारका सौदा अकेला ही करना पड़ता होगा! क्या तुम्हारी माँ एक और बाप नहीं ला सकती थी?"

"नहीं डोल्-मा, उस देशमें ऐसा रवाज नहीं है।"

डोल्-माको इस बुरे रवाजद्वारा पीड़ित लोगोंके प्रति सहानुभूति हो आई। इसी समय सीटीकी आवाज़ आई।

"डोल्-मा, वह देखो, कोन्-चोग् मुँहमें अँगुली डालकर सीटी बजा रहा है। तुम यहीं रहो, मैं जाता हूँ, शायद भेड़िया आया हो।"

स्मृतिके उठते ही ट-शी भी,—यही उस काले कुत्तेका नाम था,—उठकर खड़ा हो गया और साथ साथ भेड़ोंकी ओर चलने लगा। भेड़ें पहाड़के दूसरी ओर चर रही थीं। स्मृति यद्यपि उतराईमें अपने साथियोंकी तरह सरपट नहीं भाग सकते थे, तो भी, साल भरमें उन्होंने अपनेको बहुत निडर बना लिया था और वे काफी जल्दी जल्दी चल लेते थे। भेड़ोंको ऊपरकी ओर भागते देख ट-शी दौड़ कर पहले वहाँ पहुँचा। ट-शीके लम्बे डील डौलको देखते और भयंकर

आवाज़को सुनते ही भेड़िया तिरछा ऊपरकी ओर भागता दिखाई पड़ा। ट-शीने कुछ दूर तक पीछा किया, किन्तु चढ़ाईमें वह भेड़िये-की गतिसे नहीं दौड़ सकता था। लौटते वक्त उसे एक खरगोश दिखाई पड़ा। किस्मतका मारा ट-शीके डरसे नीचेकी ओर भागने लगा, और चन्द ही मिनटोंमें वह उसके कान तक फटे मुँहके बीचमें आ गया!

स्मृति और कोन-चोग्ने भेड़ोंको पहाड़की दूसरी ओर हाँक दिया और दोनों एक छोटी चट्टानपर बैठ गये। थोड़ी देरमें ट-शी भी आ गया। उसके मुँहसे लगा लोहू और खरगोशके नरम बाल बतला रहे थे कि ट-शीको भेड़िया भगानेका पारितोषिक मिल गया था।

२

"अबू, इसमें क्या लिखा है?" डोल्-माने एक चट्टानपर बैठे हुए स्मृतिज्ञानसे पूछा।

"डोल्-मा, इसमें भगवान्के मुखसे निकली गाथायें हैं। इसे उदान कहते हैं।"

स्मृतिको ता-नग्में चरवाही करते पाँच वर्ष बीत गये। डेढ़ वर्षके भीतर ही उन्हें भोट भाषा बोलना-समझना अच्छी तरह आ गया। भोट वर्णमालाको तो-लो-च और पद्मरुचिने नेपालमें ही उन्हें सिखा दिया था। भाषा सीख लेनेपर अब उन्हें पुस्तकोंके पढ़नेकी इच्छा हुई। लेकिन वे नहीं चाहते थे कि लोग उनकी विद्याको जान जायँ, और फिर चरवाही उनसे छिन जाय। ता-नग्के मठमें एक बूढ़ा साधु रहता था। स्मृतिने सेवा-पूजा करके उससे घनिष्ठता

चढ़ाई। किसी समय उक्त मठमें कोई विद्वान् साधु रहा करता था। उसने अच्छी अच्छी पुस्तकोंका एक सुंदर संग्रह किया था। मालूम होता है, साठ-सत्तर वर्षसे किसीने 'शतसाहस्त्रिका प्रज्ञा-पारमिता' को छोड़कर बाकी पुस्तकोंको छुआ तक नहीं, इसीलिए उनके ऊपर अंगुल अंगुल मोटी गर्द जम गई थी। कहनेपर बूढ़ेने झाड़कर फिरसे उन पुस्तकोंको बाँधनेकी अनुमति दे दी। उस वक्त स्मृतिने देखा कि उनमें काव्य, दर्शन, बुद्ध-उपदेश आदिकी कितनी ही पुस्तकें हैं, जिनमें कुछ ऐसी भी हैं जिन्हें वे संस्कृतमें पढ़ चुके थे। साथ ही वहाँ उन्हें भोट-भाषाका एक व्याकरण तथा उनके कंठस्थ किये अमरकोशका भोट-अनुवाद भी मिला। अब तो स्मृति प्रायः प्रतिदिन बूढ़ेके पास पहुँचते थे। उसके लिए पानी भर लाते थे, झाड़ू दे देते थे, जूतेकी मरम्मत कर देते थे और कभी कभी अपनी खानेकी चीज़ोंमेंसे बचा कर उसे दे देते थे। वे चमड़ेके एक छोटे चोगेमें पुस्तकके पत्रोंको डालकर अपने साथ ले जाते और भेड़ोंको चराते वक्त किसी पहाड़ी चट्टानपर बैठ पन्ने निकाल कर पढ़ने लगते थे। पूछनेपर चरवाहोंसे कह देते थे, 'धर्मका पाठ कर रहे हैं।' आज भी स्मृति एक पुस्तक ही पढ़ रहे थे।

कोन्-चोग्ने झोलेको जमीनपर पटककर हाँफते हुए कहा—अबू! अबू! उस नालेमें एक काली पिशाचिन है। आज मैं बाल बाल बच गया। मैं भेड़ोंको उधर हाँकने गया था। देखा, दूर नीचे,—उस बड़ी शिलाके नीचे एक सफेदेके वृक्ष जैसी लम्बी काली पिशाचिन खड़ी है। वह मेरी ही ओर देख रही थी। उसकी लाल लाल आँखें अब तक मुझे याद हैं। मैं जान छोड़कर वहाँसे भागा। ओह, थोड़ा और नीचे जानेपर वह जरूर मुझे खा जाती!

डोल्-माने एक साँसमें कहना शुरू किया, " हाँ, मेरी मा बतलाती थी कि उस नालेमें एक काली पिशाचिनी रहती है। माने खुद, और दूसरी औरतोंने भी कंडे बीनते वक्त उसे देखा है। उस पूरबवाले नालेमें एक काला भूत रहता है। वह तो दौड़कर पकड़ता है। उस दिन देखा नहीं, चँवरी मुँहसे खून निकालकर मर गई। यह उसी काले भूतका काम था। ओह, मेरा तो कलेजा काँपता रहता है। हर नाले, हर चट्टान, हर मैदानमें भूत ही भूत हैं। उस मुर्दा काटनेकी चट्टानपर * तो सैकड़ों हैं। शाम होते ही वे नाचने गाने लगते हैं। कोन्-चोग्, अबू-ने-ले रात-दिन अकेले-दुकेले जहाँ चाहते हैं, चले जाते हैं, उन्हें डर नहीं लगता। अबू, क्या कभी तुमने भूत देखा है ? "

" नहीं, मैंने तो नहीं देखा; किन्तु तुम लोगोंको दिखा सकता हूँ। "

दोनों एक साथ बोल उठे, " कैसे ? तुमने खुद भूत नहीं देखा, तब फिर दूसरोंको कैसे दिखाओगे ? "

" मैं भूतोंको पैदा करता हूँ।

" क्या कहते हो, मैं भूतोंको पैदा करता हूँ!—क्या भूत पैदा किये जाते हैं ? "

---

* भोटमें मुर्दे न गाड़े जाते हैं और न जलाये जाते हैं। इसकी जगह मुर्दे एक खास चट्टानपर ले जाये जाते हैं जहाँ रा-को-बा लोग पहले मांसको काट कर तथा ढाक कर रख लेते हैं, फिर हड्डियोंको चूर कर सत्तूमें मिला गिद्धोंको खिला देते हैं, फिर मांस भी उन्हें दे देते हैं। इस क्रियामें दो घंटेसे अधिक समय नहीं लगता।

" हाँ डोल्-मा, सपनेमें तुम किन चीज़ोंको देखती हो? उन्हीं चीज़ोंको न जिनकी-सी शक्ल पहले तुमने कभी देखी है?"

" हाँ हाँ।"

" उसका कारण क्या है? जो चीज हम देखते हैं उसकी एक छाया मनपर अंकित हो जाती है, उसीको हम सपनेमें देखते हैं। इसी प्रकार जैसे स्थानपर जिस प्रकारके भूत होनेकी बात हम सुनते रहते हैं, वैसा स्थान और समय मिल जानेपर हमारे मनका खयाल ही भूतका रूप धारण कर बाहर चला आता है। भूत-प्रेत असलमें हमारे ही मनकी उपज हैं, जिसे यह असल बात समझमें आ जाती है, मनसे भयका खयाल हट जाता है, उसे वे चीजें नहीं दिखाई देतीं।"

" किन्तु अब्बू, तुम कह रहे थे हमें भूत दिखलानेकी बात, सो कैसे?"

" क्योंकि, तुम्हारा मन भूत-प्रेतके भावसे भरा है, तुम भूतोंसे डरती हो, इसलिए यदि मैं तुम्हारे दिलमें विश्वास उत्पन्न कर तुम्हें भूतोंका आकार-प्रकार वर्णन करके उनके देखनेकी प्रेरणा करूँ तो तुम उन्हें देखने लगोगी। असलमें तो वह भूत मेरा पैदा किया नहीं होगा। उसे तो तुम्हारा मन ही पैदा करेगा।"

" तो क्या भूत है ही नहीं?"

" ऐसा कहनेसे कोई फायदा न होगा, क्योंकि कमज़ोर दिलवाले स्वयं भूत पैदा कर देखते रहेंगे, और तुम्हारी बातको झूठ बतलायँगे। जो समझानेसे भूतोंके न होनेकी बात समझ सके उसके लिए वैसा

करना ठीक भी है। लेकिन जिसके भीतर बात धँसे ही नहीं उसे अपनी ओरसे भूत दिखलाकर, मनकी अद्भुत शक्तिका ज्ञान करा, उस खयालको दूर करना चाहिए। बिलकुल अजानको भारी पीड़ामें पड़े देखकर कितने ही जानकार जंतर-मंतर देते हैं। उसका मतलब सिर्फ़ मनको मजबूत करना है। सच बात तो यह है कि यदि मन मज़बूत हो जाय तो आदमी न भूत देख सके और न उससे डरे।"

"क्या सचमुच मन ही भूत पैदा करता है?"

"हाँ, मनकी ताक़त बहुत भारी है। उस दिन मैंने तुम्हें बोधगया और लुम्बिनी दिखलाये थे न?"

"हाँ, गयाका ऊँचे शिखरवाला मंदिर तो अब तक मुझे याद है, बहुत बड़ा है। वैसा मंदिर तो हमारे देशमें कहीं नहीं।"

"तो वह दर्शन क्या था। सचमुच तुम गया पहुँच गई या गया तुम्हारे पास चला आया? नहीं, तुम्हारे चित्तको और जगहोंसे हटाकर मैंने जैसी लम्बी-चौड़ी ऊँची इमारत तुम्हें बतलाई, तुम्हारे मनने वैसी ही एक चीज़ गढ़कर सामने रख दी। भूतके देखनेमें भी बचपनसे सुने जानेवाले ख़याल ही मनको भूत पैदा करनेपर मज़बूर करते हैं।"

"अबू-ने-ले, तुम्हारी बातें सुन सुनकर तो मेरा मन भी उसे ठीक मानने लगता है, लेकिन फिर अकेलेमें डर लगने लगता है।"

"क्योंकि बचपनसे मनमें घुसे खयाल अभी बहुत मजबूत हैं। जब वे निकल जायँगे, या निर्बल हो जायँगे, तब तुम भी भूतोंकी दासी नहीं रहोगी, बल्कि जरूरत पड़नेपर मेरी तरह भूतोंको जन्म देनेवाली बन जाओगी, अपने लिए नहीं, दूसरोंके लिए।"

"अबू, भेड़ें घेरेमें कर दीं? अच्छा लो, यह मट्ठा रक्खा है, पी लो, फिर ऊखलमें इस थोड़ेसे सत्तूको पीस डालो।" भेड़ें चराकर शामको लौटे हुए स्मृतिसे यह कहते हुए मालकिनने भुने जवोंसे भरी चँगेरीकी ओर इशारा किया।

स्मृतिको रात रहते ही उठना पड़ता था। चँवरियों और भेड़ोंके बाँधनेकी जगहसे वे गोबर और मेंगनियोंको उठाकर बाहर कूड़ेमें फेंकते थे। झाड़ते-बुहारते, पानी भरते और मालकिनकी नई नई फरमाइशोंको पूरा करते करते पहर दिन चढ़ आता था। तब थोड़ा-सा थुक्-पा (चरबी, मांस, सत्तू डालकर बनी पतली लेई जैसा भोजन) पीते, एक टुकड़ा सूखा मांस खाते और फिर झोलेमें भुना जौ डाल भेड़ोंको ले जानेके लिए तैयार हो जाते। दिन-भरकी चरवाहीके बाद लौटते, तब फिर भेड़ोंके उनके बाड़ेमें करते ही मालकिन कामोंकी फरमाइश करने लग जाती थी। अबू-ने-लाको बिना काममें लगे देखना वे बर्दाश्त ही नहीं कर सकती थीं। दिन-भरके कामसे थके-माँदे स्मृति जब खा-पीकर सोना चाहते थे, उस वक्त उन्हें पत्थरकी खरल जैसी ऊखलीमें सत्तू पीसनेका काम बतला दिया जाता था।

बेचारे स्मृतिका बदन आज दिन-भरके कामसे चूर चूर हो रहा था। ऊपरसे बड़े जोरसे नींद आ रही थी। पीसते पिसते एक बार क्यों ही झपकी ली, उनका सिर लोढ़ेपर तड़ाकसे जाकर बजा। अभी उस चोटकी पीड़ासे उनका दिल तिलमिला ही रहा था कि मालकिनने वाग्-वाण छोड़ने शुरू किये, "अरे अबू, सत्तू सत्यानाश करके ही छोड़ोगे? बड़े बेपरवाह आदमी हो। क्या जौ बिखेर दिये!"

स्मृतिकी आँखोंमें आँसू छलछला आये। उन्होंने अपने मनमें

कहा, क्या इन जवोंसे भी मेरा सिर सस्ता है, जो उसके फूटनेकी बात न पूछकर जवोंके बिखेर देनेकी बात कही जाती है ?

* * * *

जाड़ेके दिन थे, हड्डीतकको जमा देनेवाली तिब्बतकी ठंड थी। स्मृति भेड़ोंको चरनेकी जगह छोड़कर भेड़की पोस्तीन पहने एक चट्टानकी आड़में धूप ले रहे थे। एकाएक ऊपर उड़ते बाजके चंगुलसे छूटकर एक मरी मैना उनकी गोदमें आ गिरी।

"अरे मैना यहाँ कहाँ ! मैना, तू कैसे आई ? आह ! भारतके आम्र-कुंजोंमें निर्द्वन्द्व बिहरनेवाली मैना, तू कैसे इस अपरिचित बेगाने मुल्कमें ? मैना, तेरी तरह मैं भी इस अपरिचित बेगाने मुल्कमें आ पड़ा हूँ। जैसी वेदनायें तूने सहीं, मैं भी सात सालसे दिनरात सह रहा हूँ। और कौन जानता है, तेरी तरह मुझे भी अज्ञात गुमनाम इस बियाबानमें शरीर छोड़ना पड़े ! मैना, तू सौभाग्यशालिनी है। तुझे इस अपरिचित स्थानमें भी मुझ जैसा अपना देशवासी दो आँसू बहानेके लिए तो मिल गया। मेरे भाग्यमें तो शायद यह भी बदा नहीं है।"

कहते कहते स्मृतिका गला भर आया, वे रो पड़े।

* * * *

"अबू, क्या कर रहे हो इतनी देरसे ? देखो, काठकी बाल्टी ले आओ, बछड़ेको खोल दो, चँवरी दुहूँगी।"

"जैसी आज्ञा" कहकर स्मृतिने बछड़ेको छोड़ दिया और बाल्टी मालकिनको थमा दी।

"अच्छा, अबू-ने-ले, चँवरी ऊँची है, बैठ जाओ, मैं दूध दुह लूँ।"

स्मृति घुटनोंके बल बैठ गये और मालकिन बेतकल्लुफीसे उनकी पीठपर बैठकर दूध दुहने लगी।

स्मृति जवान थे। उनका शरीर भी बहुत मज़बूत था। किन्तु, अत्यधिक परिश्रम और भोजनकी दुर्व्यवस्थाने उनके शरीरको निर्बल बना दिया था; ऊपरसे पिछले मासके ज्वरने सोनेके शरीरको मिट्टीमें मिला दिया था। संकोचके मारे उन्होंने 'नहीं' तो न किया; किन्तु मालकिनके शरीरके बोझको सँभालनेमें उनकी बुरी हालत हो गई। एक बार उनके जैसे आदर्शवादीकी आँखें भी डबडबा आईं और वे अपने मनमें कहने लगे—आह भोट देश! तेरे यहाँ मनुष्यका कुछ भी मोल नहीं। भारतमें भी दास हैं। उनकी खरीद-फ़रोख्त भी होती है। वे सताये भी जाते हैं। किन्तु मनुष्यसे पीढ़ेका काम तो वहाँ भी नहीं लिया जाता!

* * * *

"चो-ला! क्या कहते हो? यह गीत तुम्हारे चरवाहेने बनाया है?"

जीभ निकाल करके धनी और बड़े प्रभावशाली विद्वान् साधु चे-से-चब् लो-च-वाके प्रति सम्मान प्रकट करते हुए स्मृतिके मालिकने कहा—हाँ जी, वह इस तरहके अंडबंड गीत बहुत बनाया करता है और दीवारों पत्थरों और लकड़ियोंपर जहाँ तहाँ लिख देता है। उसके साथी चरवाहोंको उसके बनाये बहुत गीत याद हैं।

"चरवाहा कितने दिनोंसे तुम्हारे पास है?"

"आठ वर्ष हो गये।"

"और उम्र?"

"यही बत्तीस तेतीसकी होगी।"

"उसे चरवाही छोड़कर दूसरा काम क्यों नहीं देते?"

'कहता तो हूँ; किन्तु, वह उसीको पसन्द करता है। वह काममें

बड़ा मुस्तैद है। गुस्सा होना तो जानता ही नहीं। इसलिए हम लोग नहीं चाहते कि उसकी मर्जीके खिलाफ़ काम दिया जाय।"

"उसका जन्म क्या तुम्हारे ही गाँवका है या ल्हो-खाका?"

"नहीं, न वह हमारे गाँवका है, न ल्हो-खाका। उसकी सूरत दूसरी ही तरहकी है। बड़ी लम्बी भोंड़ी-सी नाक है। हमारे गाँवके बूढ़े अ-खू-तोब्‌ग्य बहुत घूमे हुए हैं। वे कहते हैं, अ-बू-ने-लाका मुँह स्वामी दीपंकर श्रीज्ञान×से बहुत मिलता है। ने-ला तो ठीक नहीं बतलाता, पूछनेपर कह देता है, दक्षिणमें नेपालकी ओर मेरे मा-बाप रहा करते थे।"

"तुम नहीं पहचानते, वह कोई महापुरुष है, भेस बदलकर तुम्हारी नौकरी कर रहा है।"

"हम लोग तो अधिक पढ़े-लिखे नहीं हैं। इतना जानते हैं कि ने-लाको ताराकी स्तुति याद है। वह बड़ा आज्ञाकारी नौकर है, इसलिए हमें बहुत प्रिय है।"

चे-से-चब्‌को अब निश्चय हो गया कि उनके मेज़बानका चरवाहा साधारण आदमी नहीं है, और जो उड़ती ख़बर उन्हें मिली कि एक भारतीय पंडित ता-नग्‌में कई वर्षोंसे भेड़ोंकी चरवाही कर रहा है, सो ठीक है। उन्होंने घरके मालिकसे पूछा, "अबू-ने-ला कहाँ हैं? उन्हें जाकर देख सकता हूँ?"

"वह भेड़ोंके साथ आता ही होगा। आप क्यों तकलीफ़ करेंगे?"

भेड़ें आ गईं, किन्तु, स्मृति साथमें नहीं आये। चे-से-चब्‌ने उकताकर फिर पूछा। घरवालेने कहा—हमारी गुम्बाका साधु आजकल बीमार है। ने-ला रोज़ शाम-सबेरे उसकी सेवाके लिए जाया करता है। अभी आता ही होगा।

× उस समयके विक्रमशिला विश्वविद्यालयके प्रसिद्ध आचार्य जो तिब्बत गये थे (ई० सन् ९२८-१०५४)

थोड़ी देरके बाद दूरसे आता हुआ एक आदमी दिखाई पड़ा। उसका कद लम्बा था, शरीर कृश, ललाट आगेको उभड़ा हुआ। बीसों जगहसे फटा चोगा और सड़ा-गला जूता उसकी असह्नीय दरिद्रताको बतला रहा था। चेहरेको अच्छी तरह देखते ही चे-से-चब्को पहचाननेमें देर न लगी। एक भारतीय पण्डित महात्मा, और वह इस स्थितिमें! सोचते ही उनके आँखें भर आईं और उन्होंने उठकर बड़े विनम्र भावसे स्मृतिका अभिवादन कर कहा; "स्वामी, आपने क्यों यह कष्टमय जीवन स्वीकार किया है?"

"मैं जो काम कर सकता हूँ उसीको कर रहा हूँ। संसारमें ईमानदारीके साथ जीविकाके लिए कोई न कोई काम करना ही चाहिए।"

"अरे! आप जैसे महान् पण्डितके लिए यह काम शोभा नहीं देता।"

"आप ग़लती कर रहे हैं। शायद आप किसी दूसरेके भ्रममें हैं। मैं तो मालिकका एक ग़रीब और मूर्ख नौकर हूँ।"

"नहीं, अब आप अपनेको छिपा नहीं सकते! आठ वर्ष चुपचाप भेड़ें चरा लीं सो चरा लीं।"

स्मृतिने अपनेको बहुत छिपाना चाहा; किन्तु अब वह हो नहीं सकता था। आखिर हारकर उन्होंने कहा, "मैं इसी जीवनसे सन्तुष्ट हूँ।" लेकिन चे-से-चब् तो उनसे विद्या सीखनेके लिए आया था। वह उनकी सहायतासे संस्कृत ग्रन्थोंका भोट-भाषामें अनुवाद करना चाहता था। स्मृतिके बहुत ज़िद करनेपर उसने कहा, "तब मैं भी यहीं आपके साथ रहूँगा।" अन्तमें यह ठहरा कि यदि मालिक छुट्टी दे दें तो स्मृति साथ जायँगे।

मालिकने अकेलेमें पूछनेपर कहा, "नहीं महाराज, आप बड़े

हैं। हमपर दया कीजिए। ने-ला हमारा बड़ा अच्छा नौकर है। उसके बिना हमारे घरका काम नहीं चल सकता। उसे पण्डित और महात्मा बनाकर हमसे मत छीनिए। आपको ऐसे दूसरे नौकर बहुत मिल सकते हैं।"

स्मृतिज्ञानकीर्तिके जीवन-लेखकोंने लिखा है कि चे-से-चब्के बहुत कहनेपर भी स्मृतिको उनका मालिक देनेपर राजी नहीं हुआ। अन्तमें इस तरह काम बनता न देख वे अपनी दिव्य-शक्ति दिखलानेपर मजबूर हुए। देखते देखते ता-नग्का आकाश-मंडल मेघाच्छन्न हो गया। घनघोर वर्षा होने लगी। ब्रह्मपुत्रकी धार बढ़कर गाँवके पास तक आ गई। चे-से-चब्ने पूछा, "गाँवको डुबाना चाहते हो या भारतीय महात्माको ले जानेकी हमें अनुमति देते हो?"

अन्तमें बेचारेको 'हाँ' करना पड़ा। स्मृतिने फिर चे-से-चब्के लाये भिक्षुओंके वस्त्रको पहना। घरवालोंने अपने अपराधोंके लिए बार बार क्षमा माँगी। और एक दिन सबेरे अपने आठ वर्षके निवास और उसके निवासियोंकी ओर हसरत-भरी निगाहसे देखते हुए स्मृतिज्ञान चे-से-चब्के साथ चल दिये।

प्रश्नावली

१ निम्नलिखित शब्दोंके अर्थ लिखो और उन्हें वाक्योंमें प्रयुक्त करो— प्रखर, शून्यप्राय, चँवरियाँ, उपत्यका, मानव-चिह्न, भीमकाय, कपोल-शायिनी, संस्कृत, आम्र-कुञ्ज, कण्ठस्थ, फरमाइश, दुर्व्यवस्था।

२ इस कथासे तुम्हें तिब्बतनिवासियोंके सामाजिक जीवनकी क्या क्या बातें मालूम होती हैं, लिखो।

३ यदि इसी कथाको स्मृतिज्ञान कहते, तो किस प्रकार कहते?

४ स्मृतिज्ञानने किस इच्छासे इतना कष्ट सहन किया?

कुत्ते

पशु-विज्ञानके प्रोफेसरोंसे पूछा, सालोत्तरियोंसे दरियाफ्त किया, सिर खपाते रहे; लेकिन कभी समझमें ही न आया कि आखिर कुत्तोंसे फायदा क्या है? गायको लीजिए, दूध देती है; बकरीको लीजिए, दूध देती है; यह कुत्ते क्या करते हैं? अब जनाब बफ़ादारी अगर इसीका नाम है, कि शामको सात बजेसे जो भूँकना शुरू किया तो लगातार बिना दम लिये सुबहके छह बजे तक, भूँकते चले गये तो हम लंडूरे ही भले।

कलहीकी बात है कि रातको कोई ग्यारह बजे एक कुत्तेकी तबीयत जो जरा गुदगुदाई तो उसने बाहर सड़कपर आकर मानों पूर्ति करनेके लिए समस्या ही दे डाली। एक आध मिनट बाद सामनेके बंगलेके एक कुत्तेने उसे दुहरा दिया। अब ज़नाब, एक पुराने अभ्यस्त उस्तादको जो गुस्सा आया, तो एक हलवाईकी भट्टीसे बाहर लपका और भन्नाके उसकी पूर्ति कर डाली! इसपर उत्तर-पूरबकी ओरसे एक मर्मज्ञ कुत्तेने जोरसे दाद दी। अब तो मुशायरा वह गर्म हुआ कि कुछ न पूछिए! कम्बख्त बाज बाज तो लम्बे लम्बे कवित्त-से और छप्पय-से जोड़कर सुना गये! वह हंगामा गरम हुआ कि ठंडा होने ही न आता था। हमने खिड़कीसे हज़ारों दफा 'आर्डर आर्डर' पुकारा, लेकिन ऐसे मौकेपर सभापतिकी भी कोई कभी सुनता है! अब इनसे कोई पूछे कि मियाँ, तुम्हें ऐसा जरूरी मुशायरा करना था तो दरियाके किनारे खुली हवामें जाकर अपनी प्रतिभा दिखाते! घरोंके बीचमें आकर सोतोंको सताना कौन-सी शराफत है?

फिर हम देशी लोगोंके कुत्ते भी कुछ अजीब बदतमीज होते हैं।

अकसर तो इनमें ऐसे देशभक्त होते हैं कि कोट पतलून देखते ही भूँकने लग जाते हैं। खैर, यह तो एक हद तक तारीफ़के लायक भी है। इसका जिक्र ही जाने दीजिए।

इसके सिवाय एक और बात है। हमें बहुत बार डालियाँ लेकर साहब लोगोंके बंगलोंपर जानेका मौका आया है। खुदाकी कसम, साहबोंके कुत्तोंमें वह सभ्यता देखी कि वाह वाह करके लौटे। ज्यों ही बंगलेके फाटकमें दाखिल हुए, त्यों ही कुत्तेने बरामदेहीमें खड़े खड़े एक हल्की-सी 'बख' कर दी और फिर वह मुँह बन्द करके खड़ा हो गया। हम आगे बढ़े, तो उसने भी चार कदम आगे बढ़कर एक नाजुक और पाक आवाजमें फिर 'बख' कर दी। चौकीदारीकी चौकीदारी और संगीतका संगीत। इधर हमारे कुत्ते हैं कि न राग न सुर,—न सिर न पैर। तानपर तान लगाये जाते हैं बेताले कहींके! न मौका देखते हैं, न वक्त पहचानते हैं। गलेबाजी किये चले जाते हैं। घमंड इस बातका है कि तानसेन इसी मुल्कमें तो पैदा हुए थे!

इसमें सन्देह नहीं, कुत्तोंसे हमारा सम्बन्ध जरा खिंचा हुआ-सा रहा है; लेकिन हमसे कसम ले लीजिए जो ऐसे मौकोंपर हमने कभी अहिंसा छोड़कर सत्याग्रहसे मुँह मोड़ा हो। शायद इसे आप झूठ समझें; लेकिन खुदा गवाह है कि आजतक कभी किसी कुत्तेपर हाथ उठ ही न सका। अगरचे दोस्तोंने सलाह दी कि रातके वक्त लाठी या छड़ी जरूर हाथमें रखनी चाहिए, क्योंकि वह बिल्लियोंको दूर रखती है; परन्तु, हम किसीसे यों ही बैर मोल नहीं लेना चाहते। कुत्तेके भूँकते ही हमारी स्वाभाविक शिष्टता हमपर इतना अधिकार कर लेती है कि अगर आप हमें उस वक्त देखें तो सचमुच यही समझेंगे कि हम डरपोक हैं। शायद उस वक्त आप यह भी अनुमान

कर लें कि हमारा गला सूखा जाता है। यह अलबत्ता ठीक है। ऐसे मौकेपर यदि मैं गानेकी कोशिश करूँ तो षडजके सुरोंके सिवा और कुछ नहीं निकलता। अगर आपने भी हमारी जैसी तबीयत पाई हो, तो आप देखेंगे कि ऐसे मौकेपर ईश्वरकी सर्वव्यापकता आपकी समझसे दूर हो जायगी और उसकी जगह आप शायद मार्ग-प्रदर्शनकी प्रार्थना पढ़ने लग जायँगे।

कभी कभी ऐसा प्रसंग आया है कि रातके दो बजे छड़ी घुमाते घुमाते थियेटरसे वापस आ रहे हैं और नाटकके किसी न किसी गीतकी तर्ज बुद्धिमें बिठानेकी कोशिश कर रहे हैं। चूँकि गीतके शब्द याद नहीं हैं और नये अभ्यासका जमाना भी है, इसलिए सीटीपर ही सन्तोष किया है। अगर बेसुरे भी हो गये हैं तो सुननेवाला यही समझा कि यह अँग्रेजी संगीत है। इतनेमें एक मोड़पर जो मुड़े तो देखा सामने एक बकरी बँधी है। जरा मेरी कल्पनाको तो देखिए, मैंने उसे भी कुत्ता समझा! एक तो कुत्ता, दूसरे बकरीके बराबर लम्बा चौड़ा! बस उसे देखते ही हाथ-पाँव फूल गये। छड़ीका हिलना कम होते होते हवामें एक विचित्र कोणपर जा रुका। सीटीका संगीत भी थर-थराकर मौन हो गया। लेकिन क्या मजाल, कि हमारी थूथनीकी तराशी हुई सूरतमें जरा भी फर्क आया हो। मालूम होता था कि बे-आवाज़ लय अभी तक निकल रही है। डाक्टरोंका सिद्धान्त है कि ऐसे मौकेपर अगर सर्दीके मौसिममें भी पसीना आ जाय तो कोई हर्ज नहीं। बादमें फिर सूख जाता है।

चूँकि हम स्वभावसे ही थोड़ा सावधान रहते हैं, इसलिए आज तक कुत्तेके काटनेका कभी इतिफ़ाक़ नहीं हुआ,—यानी किसी कुत्तेने आज तक हमको नहीं काटा। अगर ऐसी दुर्घटना कभी हुई

होती तो इस कहानीके बदले हमारा मर्सिया छप रहा होता और क़ब्रपर प्रार्थनाकी यह तुक लिखी होती—

'इस कुत्तेकी मिट्टीसे भी कुत्ता घास पैदा हो।'

जब तक इस दुनियामें कुत्ते मौजूद हैं और वे भूँकनेपर तुले हैं तब तक यही समझिए कि हम क़ब्रमें पाँव लटकाये बैठे हैं। फिर इन कुत्तोंके सिद्धान्त भी निराले हैं। यह ऐसा छुतैला रोग है, जो बच्चे, जवान, बूढ़े सभीको होता है। अगर कोई खुर्राट सिकन्दर कुत्ता अपने रौब और दबदबेको कायम रखनेके लिए भूँक ले तो हम भी कह दें कि अच्छा भई, भूँक (यद्यपि ऐसे समयमें उसको जंजीरसे बँधा होना चाहिए); लेकिन ये कम्बख़्त दो दो बरसकी उम्रके, दो दो तीन तीन तोलेके पिल्ले भी तो भूँकनेसे बाज नहीं आते। बारीक आवाज, जरासा फेंफड़ा, उसपर भी इतना जोर लगाकर भूँकते हैं कि आवाज़की थर्राहट दुम तक पहुँचती है। फिर भूकते हैं चलती मोटरके सामने आकर; मानो उसे रोक ही तो लेंगे! अब अगर मैं मोटर चला रहा होऊँ, तो निश्चय ही हाथ काम करनेसे इनकार कर देंगे। लेकिन हर कोई तो यों उनकी जान नहीं बचा देगा!

कुत्तोंके भूँकनेपर मुझे सबसे बड़ा एतराज़ यह है कि उनकी आवाज़ सोचनेकी तमाम शक्तियोंको गायब कर देती है। खास तौरपर तब जब किसी दूकानके तख़्तेके नीचेसे उनका एक पूरा गुप्त अधिवेशन सड़कपर आकर अपना काम शुरू कर दे। तब, आप ही कहिए कि भला होश ठिकाने रह सकते हैं? हर-एककी तरफ बारी बारीसे ध्यान देना पड़ता है। कुछ तो उनका शोर और कुछ उनकी विचार-धाराकी आवाज़ (ओठोंके भीतर ही); बेढंगी

हरकतें और निश्चलता (हरकतें उनकी निश्चलता हमारी), इस हंगामेमें दिमाग भला खाक काम कर सकता है! यद्यपि यह मुझे भी नहीं मालूम कि ऐसे मौकेपर अगर दिमाग काम करे भी, तो क्या तीर मारेगा। कुत्तोंका यह परले सिरेका अन्याय मेरे नजदीक हमेशा घृणाके योग्य रहा है। अगर उनका कोई प्रतिनिधि शिष्टताके साथ आकर हमसे कह दे, "महाशय, सड़क बन्द है," तो, खुदाकी कसम, बिना कुछ चूँ-चपट किये वापस लौट जायँ। और यह कोई नई बात नहीं, हमने कुत्तोंके निवेदनपर कई रातें सड़क नापनेमें बिता दी हैं। लेकिन पूरी सभाका यों एक मतसे, सम्मिलित रायसे, सीनाजोरी करना बड़ी भारी नीचता है।

खुदाने हरएक जातिमें नेक आदमी भी पैदा किये हैं। कुत्ते भी इस व्यापक नियमके अपवाद नहीं हैं। आपने ईश्वरसे डरनेवाला कुत्ता भी जरूर देखा होगा। प्रायः उसके शरीरपर तपस्याके चिह्न दीख पड़ते हैं। जब चलता है, तो ऐसी विनम्रता और लाचारीसे मानो पापोंके भारका ज्ञान आँख उठाने नहीं देता। दुम अकसर पेटके साथ लगी होती है। वह सड़कके बीचोंबीच आत्म-चिन्तनके लिए लेटकर आँखें बन्द कर लेता है। सूरत बिल्कुल दार्शनिकों,—फिलासफरोंसे मिलती है। किसी गाड़ीवालेने लगातार बिगुल बजाया, गाड़ीके भिन्न भिन्न हिस्सोंको खटखटाया, लोगोंसे कहलवाया, खुद दस-बारह बार आवाज़ें दीं, तो अपने सिरको वहीं जमीनपर रखे रखे लाल मस्ती-भरी आँखोंको खोला, परिस्थितिपर एक नजर डाली और फिर आँखें बन्द कर लीं! किसीने एक चाबुक लगा दिया, तो आप पूरे इतमीनानके साथ वहाँसे हटकर एक गजपर

जा लेटे और विचार-धाराके सिलसिलेको, जहाँसे वह टूट गया था, वहींसे फिर शुरू कर दिया। किसी बाइसिकलवालेने घंटी बजाई, तो लेटे ही लेटे समझ गये कि बाइसिकल है। ऐसी छिछोरी चीजोंके लिए रास्ता छोड़ देना वे फकीरी शानके खिलाफ समझते हैं।

रातके वक्त यही कुत्ता अपनी सूखी पतली-सी दुमको, जहाँतक सम्भव हो सकता है, सड़कपर फैलाकर रखता है। उससे उसे केवल ईश्वरके चुने हुए सेवकोंकी पहचानकी इच्छा होती है। जहाँ आपने गलतीसे उसपर पाँव रख दिया, उसने गुस्सेके लहज़ेमें आपसे शिकायत शुरू कर दी, "बच्चा, फकीरोंको छेड़ता है! दिखाई नहीं देता कि हम साधु लोग यहाँ बैठे हैं?" बस, इस साधुकी दुराशीषसे उसी वक्त रोंगटे खड़े होना शुरू हो जाते हैं। बादमें कई रातोंतक यही सपने दिखाई देते रहते हैं कि बेशुमार कुत्ते टाँगोंसे लिपटे हैं और जाने नहीं देते। आँख खुलती है, तो देखते हैं कि पाँव चारपाईकी अदवानमें फँसे हुए हैं!

अगर खुदा मुझे कुछ दिनके लिए इस जातिकी भाँति भूँकने और काटनेकी ताक़त दे तो बदला लेनेका उन्माद मेरे पास पर्याप्त मात्रामें मौजूद है। धीरे धीरे सब कुत्ते कसौली पहुँच जायँ। फारसीके एक कविने कहा है कि "हे उरफी, तू अपने प्रतिद्वन्द्वियोंकी चिल्ल-पोंका अन्देशा न कर, क्योंकि कुत्तोंके भूँकनेसे फकीरोंको जो मिलना होता है उसमें कमी नहीं होती।" मतलब यह है कि कुत्ते भूँकते रहते हैं और लोग अपनी राह चले जाते हैं।

यही प्रकृतिसे विरुद्ध कविता है जो एशियाकी अवनतिका कारण है। अँगरेजी कहावत है, "भूँकते हुए कुत्ते काटा नहीं करते।"

यह सच है, लेकिन कौन जानता है कि एक भूँकता हुआ कुत्ता कब भूँकना बन्द कर दे और काटना शुरू कर दे ?

प्रश्नावली

१ निम्नलिखित शब्दोंका अर्थ लिखो और उन्हें वाक्योंमें प्रयुक्त करो— सालोत्तरी, दरियाफ्त, लंडूरे, बदतमीज, पूर्तिके लिए समस्या, प्रतिभा, मुशायरा, तराशी, रौब, दबदबा, छुतैला, खुर्राट, कम्बख्त, एतराज ।

२ निम्नलिखित मुहाविरोंका उपयोग करो—
तबीयत गुदगुदाना, दाद देना, हंगामा गरम होना, डाली ले जाना, चूँ चपड़ करना, इतमीनानके साथ।

३ इस लेखमें जो विनोद और व्यङ्गय है, उसे समझाओ ।

हिंसापर अहिंसाकी विजय

[बाबू जयशंकर 'प्रसाद' कृत 'स्कन्दगुप्त' नाटकके चौथे अंकका पाँचवाँ दृश्य। स्कन्दगुप्त प्रख्यात गुप्तवंशका सातवाँ राजा था। इसका समय ई० सन् ४५५ से ४६७ तक माना जाता है। यह भागवत धर्मका अनुयायी था। उस समय बौद्ध धर्मका ह्रास होने लगा था और ब्राह्मण धर्म फिर राज-मान्य हो रहा था। बाहरसे शकों तथा हूणोंके आक्रमण हो रहे थे। उन्हें रोकनेके लिए जब स्कन्दगुप्त बाहर गया हुआ था और उसका कोई पता न लग रहा था, तब पुरगुप्त एक षड्यन्त्र रचकर स्वयं राजा बन बैठा। हूणोंका कोई धर्म नहीं था; परन्तु बौद्ध प्रचारकोंके उपदेशसे उनमेंसे बहुतसे बौद्ध हो गये थे। साधुओं और संस्थाओंनें इस आशासे कि इनकी सहायतासे बौद्ध धर्मके अतीत गौरवका पुनरुद्धार होगा पहले पहले हूणोंको सहायता पहुँचाई; परन्तु, पीछे उनकी दुष्ट प्रवृत्ति देखकर उन्होंने अपना हाथ खींच लिया। उसी समयकी एक घटना इस दृश्यमें चित्रित की गई है।]

स्थान—बिहारके समीपका चौराहा

[एक ओर ब्राह्मण लोग बलिका उपकरण लिये खड़े हैं। दूसरी ओर भिक्षु और बौद्ध जनता उत्तेजित भावसे खड़ी है।]

(दण्डनायकका प्रवेश)

दण्डनायक—नागरिको, यह समय अन्तर्विद्रोहका नहीं है। देखते नहीं हो कि साम्राराज्य बिना कर्णधारका जहाज होकर डगमगा रहा है, और तुम लोग छोटी छोटी-सी बातोंके लिए झगड़ते हो!

ब्राह्मण—इन्हीं बौद्धोंने गुप्त शत्रुका काम किया है। कई बारके विताड़ित हूण इन्हीं लोगोंकी सहायतासे फिर आये हैं। इन गुप्त शत्रुओंको कृतघ्नताका उचित दण्ड मिलना चाहिए।

श्रमण—ठीक है। गंगा, जमना और सरजूके तटपर गड़े हुए यज्ञ-यूप सद्धर्मियोंकी * छातीमें ठुकी हुई कीलोंकी तरह अब भी खटकते

---

* बौद्धोंकी।

हैं। हम लोग निस्सहाय थे, क्या करते? विधर्मी विदेशियोंकी शरणमें ही यदि प्राण बच जायँ और धर्मकी रक्षा हो तो अच्छा ही है। राष्ट्र और समाज मनुष्योंके द्वारा बनते हैं उन्हींकी सुख-साधनाके लिए। जिस राष्ट्र और समाजमें हमारी सुख-शान्तिमें बाधा पड़ती हो, उसका हमें तिरस्कार करना ही होगा। इन संस्थाओंका उद्देश्य है मानवकी सेवा। यदि वे हमींसे अवैध सेवा लेना चाहें और हमारे कष्टोंको न हटावें, तो हमें उसकी सीमाके बाहर जाना ही पड़ेगा।

ब्राह्मण—ब्राह्मणोंको इतनी हीन अवस्थामें बहुत दिनोंतक विश्वनियन्ता नहीं देख सकते। जो जाति विश्वके मस्तिष्कका शासन करनेका अधिकार लिये उत्पन्न हुई है, वह कभी चरणोंके नीचे न बैठेगी। आज यहाँ बलि अवश्य होगी। हमारे धर्माचरणमें स्वयं विधाता भी बाधा नहीं डाल सकते।

श्रमण—निरीह प्राणियोंके वधमें कौन-सा धर्म है ब्राह्मण? तुम्हारी इसी हिंसा-नीति और अहंकार-मूलक आत्मवाद[1]का खण्डन तथागत[2]ने किया था। उस समय तुम्हारा ज्ञान-गौरव कहाँ था! क्यों नत-मस्तक होकर समग्र जम्बूद्वीप[3]ने उस ज्ञान-रण-भूमिके प्रधान मल्लके सामने हार स्वीकार की? तुम हमारे धर्मपर अत्याचार किया चाहते हो? यह नहीं हो सकेगा। इन पशुओंके बदले हमारी बलि होगी। रक्त-पिपासु दुर्दान्त ब्राह्मणदेव, तुम्हारी पिपासा हम अपने रुधिरसे शान्त करेंगे।

---

१ आत्मवाद अर्थात् आत्मतत्त्वको मानना—बौद्ध सिद्धान्त आत्माको नहीं मानता, क्यों कि इससे मनुष्यमें झूठे अहंकारकी उत्पत्ति होती है। २ भगवान् बुद्ध। ३ एशिया महाद्वीप।

(धातुसेनका प्रवेश)

धातुसेन—अहंकार-मूलक आत्मवादका खंडन करके गौतमने विश्वात्मवादको[1] नष्ट नहीं किया। यदि वैसा करते तो इतनी करुणाकी क्या आवश्यकता थी? उपनिषदोंके 'नेति' 'नेति'[2] से ही गौतमका अनात्मवाद पूर्ण है। यह प्राचीन महर्षियोंका कथित सिद्धान्त 'मध्यमा प्रतिपदा' के नामसे संसारमें प्रचारित हुआ। व्यक्तिरूपमें आत्मा कुछ नहीं है[3]। यह एक सुधार था। उसके लिए रक्तपात क्यों?

दंडनायक—देखो, यदि ये हठी लोग कुछ तुम्हारे समझानेसे मान जायँ, अन्यथा यहाँ बलि न होने दूँगा।

ब्राह्मण—क्यों न होने दोगे? अधार्मिक शासक, क्यों न होने दोगे? आज गुप्त कुचक्रोंसे गुप्त-साम्राज्य शिथिल है। कोई क्षत्रिय राजा नही जो ब्राह्मणके धर्मकी रक्षा कर सके,—जो धर्माचरणके लिए अपने राजकुमारोंको तपस्वियोंकी रक्षामें नियुक्त करे। आह धर्मदेव! तुम कहाँ हो?

धातुसेन—सप्तसिन्धु-प्रदेश नृशंस हूणोंसे पादाक्रान्त है। जाति भीत और त्रस्त है, और उसका धर्म असहाय अवस्थामें पैरोंसे कुचला जा रहा है। क्षत्रिय राजा,—धर्मका पालन करानेवाला राजा, पृथ्वीपर क्यों नहीं

---

१ विश्वात्मवादका अर्थ यह मानना है कि यह संपूर्ण विश्व ही एक आत्माका बृहत् शरीर है और वह आत्मा ही 'विश्वात्मा' या परमात्मा है।

२ 'नेति' 'नेति' का अर्थ है 'ऐसा नहीं, ऐसा नहीं'। उपनिषदोंमें ईश्वरविषयक प्रश्नोत्तरमें उसके वर्णनमें कहा गया है कि 'ऐसा नहीं है' 'ऐसा नहीं है' मानो परमात्माका स्वरूप ही 'ऐसा नहीं' कहकर वर्णन किया गया है।

३ अर्थात् परमात्मासे स्वतंत्र या अलग आत्मा अपने आपमें कुछ नहीं है।

रह गया ? आपने इसे विचारा है ? क्यों ब्राह्मण टुकड़ोंके लिए अन्य लोगोंकी उपजीविका छीन रहे हैं ? क्यों एक वर्णके लोग दूसरोंकी आजीविकाएँ ग्रहण करने लगे हैं ? लोभने तुम्हारे धर्मको व्यवसाय बना दिया। दक्षिणाओंकी योग्यतासे स्वर्ग, पुत्र, धन, यश, विजय और मोक्ष तुम बेचने लगे। कामनासे अन्धी जनताके विलासी समुदायके ढोंगके लिए तुम्हारा धर्म आवरण हो गया। जिस धर्मके आचरणके लिए पुष्कल स्वर्ण चाहिए, वह धर्म जन-साधारणकी सम्पत्ति नहीं। धर्म-वृक्षके चारों ओर स्वर्णके काँटेदार जाल फैलाये गये हैं और व्यवसायकी ज्वालासे वह दग्ध हो रहा है। जिन धनवानोंके लिए तुमने धर्मको सुरक्षित रक्खा, उन्होंने समझा कि धर्म धनसे खरीदा जा सकता है, इसलिए धनोपार्जन मुख्य हुआ और धर्म गौण। जो पारस्य देशकी मूल्यवान् मदिरा रातको पी सकता है, वह धार्मिक बने रहनेके लिए प्रभातमें एक गो-दान भी कर सकता है। धर्मको बचानेके लिए तुम्हें राज-शक्तिकी आवश्यकता हुई। धर्म इतना निर्बल है कि वह पाशव बलके द्वारा सुरक्षित होगा।

ब्राह्मण—तुम कौन हो मूर्ख उपदेशक ? हट जाओ, तुम नास्तिक, प्रच्छन्न बौद्ध, तुमको क्या अधिकार है कि हमारे धर्मकी व्याख्या करो ?

धातुसेन—ब्राह्मण क्यों महान् हैं ? इसीलिए कि वे त्याग और क्षमाकी मूर्ति हैं। इसीके बलपर बड़े बड़े सम्राट् उनके आश्रमोंके निकट निरस्त्र होकर जाते थे, और वे तपस्वी ऋत और अमृतवृत्तिसे जीवन-निर्वाह करते हुए सायं-प्रातः अग्निशालामें भगवानसे प्रार्थना करते थे—

---

१ ब्राह्मणके लेने योग्य अयाचित्त अन्न धन आदि।

सर्वे पि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥*

आप लोग उन्हीं ब्राह्मणोंकी संतान हैं जिन्होंने अनेक यज्ञोंको एकबारगी बंद कर दिया था। उनका धर्म समयानुकूल प्रत्येक परिवर्तनको स्वीकार करता है; क्यों कि मानव-बुद्धि उस ज्ञानका विस्तार करेगी जो वेदोंके द्वारा हमें मिला है, उसके विकासके साथ बढ़ेगी और यही धर्मकी श्रेष्ठता है।

(प्रख्यातकीर्तिका प्रवेश)

प्रख्यातकीर्ति—धर्मके अंधभक्तो, मनुष्य अपूर्ण है। यही विकासका रहस्य है। यदि ऐसा न हो तो ज्ञानकी वृद्धि असम्भव हो जाय। प्रत्येक प्रचारकको कुछ कुछ प्राचीन असत्य परम्पराओंका आश्रय इसीसे ग्रहण करना पड़ता है। सभी धर्म, समय और देशकी स्थितिके अनुसार विवृत्त हो रहे हैं और होंगे। हम लोगोंको अपनी हठधर्मीसे भविष्यके उन क्रमिक पूर्णता प्राप्त करनेवाले ज्ञानोंसे मुँह न फेरना चाहिए। हम लोग एक ही मूल-धर्मकी दो शाखाएँ हैं। आओ, हम दोनों अपने उदार विचारके फूलोंसे दुःख-दग्ध मानवोंका कठोर पथ कोमल करें।

बहुतसे लोग—ठीक तो है। हम लोग व्यर्थ आपसमें ही झगड़ते हैं और आततायियोंको देखकर घरमें घुस जाते हैं। हूणोंके सामने तलवार लेकर इसी तरह क्यों नहीं अड़ जाते?

दण्डनायक—यही तो बात है नागरिको!

प्रख्यातकीर्ति—मैं इस बिहारका आचार्य हूँ, और मेरी सम्मति

* सब सुखी हों, निरोगी हों, सब भलाइयाँ देखें, किसीको कोई दुःख प्राप्त न हो।

धार्मिक झगड़ोंमें बौद्धोंको माननी चाहिए। मैं जानता हूँ कि भगवानने प्राणि-मात्रको बराबर बताया है, और जीव-रक्षा इसीलिए धर्म है। किन्तु जब तुम लोग स्वयं इसके लिए युद्ध करोगे, तो हत्याकी संख्या बढ़ेगी ही। अतः यदि तुममें कोई सच्चा धार्मिक हो तो वह आगे आवे, और ब्राह्मणसे पूछे कि क्या आप मेरी बलि देकर इतने जीवोंको छोड़ सकते हैं? क्योंकि मनुष्योंका मूल्य ब्राह्मणोंकी दृष्टिमें भी, इन पशुओंसे विशेष होगा। आइए, कौन आता है? किसे बोधि-सत्व[1] होनेकी इच्छा है?

(कोई नहीं हिलता)

प्रख्यात०—(हँसकर) यही आपका धर्मोन्माद था? एक युद्ध करनेवाली मनोवृत्तिकी प्रेरणासे उत्तेजित होकर अधर्म करना और धर्माचरणकी दुन्दुभी बजाना,—यही आपकी करुणाकी सीमा है? जाइए, घर लौट जाइए। (ब्राह्मणसे) आओ रक्त-पिपासु धार्मिक, लो, मेरा उपहार देकर अपने देवताको संतुष्ट करो! (सिर झुका देता हैं।)

ब्राह्मण—(तलवार फेंककर) धन्य हो महाश्रमण, मैं नहीं जानता था कि तुम्हारे ऐसे धार्मिक भी इसी संघमें हैं। मैं बलि नहीं करूँगा।

(जनतामें जयजयकार, सब धीरे धीरे जाते हैं।)

प्रश्नावली

१ इस वादविवादको अपने शब्दोंमें लिखो।

२ निम्नलिखित शब्दोंके अर्थ लिखो—

महाश्रमण, धर्मोन्माद, पुष्कल, अन्तर्विद्रोह, दुर्दान्त।

---

१ बौद्धधर्मके अनुसार वह जीव जिसे मोक्ष प्राप्त करनेके लिए कुछ ही जन्म लेने बाकी हैं,—होनहार बुद्ध।

स्वर्गका एक कोना

उस सरल कुटिल मार्गके दोनों ओर, अपने कर्तव्यकी गुरुतासे निस्तब्ध प्रहरी-जैसे खड़े हुए, आकाशमें भी धरातलके समान मार्ग बना-देनेवाले सफ़ेदेके वृक्षोंकी पंक्तिसे उत्पन्न दिग्भ्रान्ति जब कुछ कम हुई तब हम एक दूसरे ही लोकमें पहुँच चुके थे जो उस व्यक्तिके समान परिचित और अपरिचित दोनों ही लग रहा था जिसे कहीं देखना तो स्मरण आ जाता है परन्तु नाम-धाम नहीं याद आता।

उस सजीव सौन्दर्यमें एक अद्भुत निष्पन्दता थी जो उसे नित्य दर्शनसे साधारण लगनेवाले सौन्दर्यसे भिन्न किये दे रही थी।

चारों ओरसे नीलाकाशको खींचकर पृथ्वीसे मिलता हुआ क्षितिज रुपहले पर्वतोंसे घिरा रहनेके कारण बादलोंसे बने घेरे जैसा जान पड़ता था। वे पर्वत अविरल और निरंतर होनेपर भी इतनी दूर थे कि धूपमें जगमगाती असंख्य चाँदी-सी रेखाओंके समूहके अतिरिक्त उनमें और कोई पर्वतका लक्षण दिखाई न देता था। जान पड़ता था किसी चित्रकारने आलस्यके क्षणोंमें रुपहले रंगमें तूलिका डुबाकर नीले धरातलपर इधर उधर फेर दी है।

जहाँ तक दृष्टि जाती थी, पृथ्वी अश्रुमुखी ही दिखाई पड़ती थी। जलकी इतनी अधिकता हमारे यहाँ वर्षाके अतिरिक्त कभी देखनेमें नहीं आती, परन्तु वहाँके धरातल और यहाँके धरातलमें उतना ही अन्तर है, जितना धुले हुए सजल मुख और आँसूभरी आखोंमें। मार्ग इतना सूखा था कि धूल उड़ रही थी, परन्तु उसके दोनों किनारे सजल थे, कहीं कहीं कमलकी आकृतिवाले छोटे फूल कुछ मीलित और कुछ अर्धमीलित दशामें झूल रहे थे।

रावलपिण्डीसे २०० मील मोटरमें चलनेसे शरीर अवसन्न हो ही रहा था, उसपर चारों ओर बिखरी हुई अभिनव सुषमा और संगीतके आरोह-अवरोहकी तरह चढ़ाव-उतारवाले समीरकी सर-सरने मनको भी ऐसा विमूर्च्छित-सा कर दिया कि श्रीनगरमें बदरिकाश्रम पहुँचकर बड़ी कठिनतासे सत्य और स्वप्नमें अन्तर जान पड़ा। वह आश्रम, जहाँ हाउस-बोटमें जाने तक हमारे ठहरनेका प्रबन्ध था, सहज किसी चिड़ियाघरका स्मरण करा देता था; कारण, वहाँ अनेक प्रान्तोंके प्रतिनिधि अपनी अपनी विशेषताओंके प्रदर्शनमें दत्त-चित्त थे। कहीं कोई पंजाबी युवती अपने वीर-वेषमें गर्वसे मस्तक उन्नत किये देखनेवालोंको चुनौती-सी देती घूम रही थी, कहीं संयुक्त-प्रान्तकी कोई प्राचीना घूँघट निकाले इस प्रकार संकोच और भयसे सिमटी हुई खड़ी थी मानो सब उसीके लज्जारूपी कोशपर आक्रमण करनेपर तुले हुए हैं और वह उसे छिपानेके लिए पृथ्वीसे स्थान माँग रही है। कहीं कोई महाराष्ट्र सज्जन शिखाका गुरु भार सिरपर धारण किये जलानेकी लकड़ियोंको धोते हुए दूसरोंके कुतूहलका कारण बन रहे थे, और कहीं कोई धर्म्म-दिग्गज धर्म-पालन और उदर-पूर्तिमें कौन श्रेष्ठ है, इस समस्याके समाधानमें तत्पर थे। प्रकृतिकी चञ्चलताकी कमीकी पूर्ति मनुष्यमें हो रही थी।

अधिकारियोंने हमारे कमरे, नौकर आदिकी जैसी सुव्यवस्था थोड़े समयमें कर दी वह सराहने योग्य थी, परन्तु वहाँके वास्तविक जीवनका परिचय तो हमें अपने हाउस-बोटमें जाकर ही मिल सका। नीले आकाशकी छायासे नीलाभ झेलमके जलमें वे रंगीन जल-यान वर्षासे धुले आकाशमें इन्द्रधनुष्यकी स्मृति दिलाते रहते थे।

जिसने इस प्रकार तरङ्गोंके स्पन्दित हृदयपर अछोर अन्तरिक्षके

नीचे रहनेका इतना सुन्दर साधन ढूँढ़ निकाला, उसके पास अवश्य ही बड़ा कवित्वमय हृदय रहा होगा। जीना सब जानते हैं और सौन्दर्यसे भी सबका परिचय रहता है, परन्तु, सौन्दर्यमें जीना किसी कलाकारका ही काम है।

हमारे पानीपर बने हुए घरमें एक सुन्दर सजी हुई बैठक, सब सुखके साधनोंसे युक्त दो शयन-गृह, एक भोजनालय और दो स्नानागार थे। भोजन दूसरे बोटमें बनता था जिसके आधे भागमें हमारा माँझी सुलतान सपत्नीक चीनकी पुतली-सी कन्या नूरी और पुत्र महमूदके साथ, अपना छोटा संसार बसाये हुए था। साथ एक तितली जैसा शिकारा भी था जिसे पानकी आकृतिवाली छोटी-सी पतवारसे चलाकर छोटा महमूद दोनों कालोंको एक करता रहता था।

हम रातको लहरोंमें झूलते हुए खुली छतपर बैठकर तटके एक एक दीपकको पानीमें अनेक बनते हुए तब तक देखते ही रह जाते थे जब तक नींद-भरी पलकें बन्द होनेके लिए सत्याग्रह न करने लगती थीं और फिर सवेरे तक कोई काम न हो सकता था जब तक जलमें सफ़ेद बादलोंकी काली छाया अरुण होकर फिर सुनहरी न हो उठती थी। उस फूलोंके देशपर रुपहले सुनहले रात-दिन बारी बारीसे पहरा देने आते जान पड़ते थे।

वहाँके असंख्य फूलोंमें मुझे दो जङ्गली फूल मज़ारपोश और लालापोश बहुत ही प्रिय लगे। मज़ारपोश अधिकसे अधिक संख्यामें फूलकर अपनी नीली अधखुली पँखड़ियोंसे अस्थि-पञ्जरको ढँके हुए धूलिको नन्दन बना देता है, और लालापोश हरे लहलहाते खेतोंमें अपने आप उत्पन्न होकर, अपने गहरे लाल रंगके कारण, हरित धरातलपर जड़े पद्मरागकी स्मृति दिला जाता है। फूलोंके अतिरिक्त

उस स्वर्गके बालक भी स्मरणकी वस्तु रहेंगे। उनकी मज़ारपोश जैसी आँखें, लालापोश जैसे ओंठ, हिम जैसा वर्ण और धूलि जैसे मलिन वस्त्र उन्हें ठीक प्रकृतिका एक अंग बनाये रखते हैं। अपनी सारी मलिनतामें कैसे प्रिय लगते हैं वे! मार्गमें चलते चलते न जाने किस कोनेसे कोई भोला बालक निकल आता और 'सलाम जनाब पासा' कहकर विश्वास-भरी आँखोंसे हमारी ओर देखने लगता। उसकी गम्भीरता देखकर यही प्रतीत होता था कि उसने सलाम करके अपने गुरुतम कर्त्तव्यका पालन कर दिया है, अब उसे सुनने-वालेके कर्त्तव्य-पालनकी प्रतीक्षा है। शीतने इन मोमके पुतलोंको अंगारोंमें पाला है और दरिद्रताने पाषाणोंमें। प्रायः सवेरे कुछ सुन्दर सुन्दर बालक नंगे पैर पानीमें करमका साग लाने दौड़ते दिखाई देते थे और कुछ अपना अपना शिकारा लिये 'सलाम जनाब पार पहुँचायगा' पुकारते हुए। ऐसे ही कम अवस्थावाले बालकोंको कारख़ानेमें शाल आदिपर गम्भीर भावसे सुन्दर बेल बूटे बनाते देखकर हमें आश्चर्य हुआ।

काश्मीरी स्त्रियाँ भी बालकोंके समान ही सरल जान पड़ीं। उनके मुखपर न जाने कैसी हँसी थी, जो क्षण-भरमें आँखोंमें झलक जाती थी और क्षण-भरमें होठोंमें। वे एड़ी चूमता हुआ कुर्ता और उसके नीचे पायजामा पहनकर एक छोटी-सी ओढ़नीको कभी कभी बीचसे तहकर तिकोना बनाकर और कभी कभी वैसे ही सिरपर डाल रहती हैं। प्रायः मुसलमान स्त्रियाँ ओढ़नीके नीचे मोती लगी या सादी टोपी लगाये रहती हैं जो सुन्दर लगती है।

प्रकृतिने इन्हें इतना भव्य रूप दिया, परन्तु निष्ठुर भाग्यने दिया-सलाईके डिब्बे जैसे छोटे मलीन अभव्य घरोंमें प्रतिष्ठित कर और

एक मलिन वस्त्र-मात्र देकर इनके सौन्दर्यका उपहास कर डाला और हृदय-हीन विदेशियोंने अपने ऐश्वर्यकी चकाचौंधसे इनके अमूल्य जीवनको मोल लेकर मूल्य-रहित बना दिया। प्रायः इतर श्रेणीकी स्त्रियाँ मुझे कागजमें लपेटी कलियोंकी तरह मुर्झाई मुस्कराहटसे युक्त जान पड़ीं। छोटी छोटी बालिकाओंके मन्द स्मितमें याचना, प्रौढ़ाओंकी फीकी हँसीमें विवशता और वृद्धाओंकी सरल चितवनमें असफल वात्सल्य झाँकता रहता था।

इसके अतिरिक्त, सफेद दुग्धफेनिभ दाढ़ीवाले, आँखोंमें पुरातन चश्मा चढ़ाये, उँगलियोंमें सुई दबाकर कलाको वस्त्रोंमें प्रत्यक्ष करते हुए शिल्पकार मुझे तपस्वियों-जैसे भव्य लगे। इस सुन्दर हिम-राशिमें समाधिस्थ पर्वतके हृदयमें इतनी कला कैसे पहुँचकर जीवित रह सकी, यह आश्चर्यका विषय है। कोई काष्ठ जैसी नीरस वस्तुको सुन्दर आकृति देकर सरस बना रहा था, कोई कागज कूट-कर बनाई हुई वस्तुओंपर छोटी तूलिकासे रंग भर-भरकर उसमें प्राणोंका संचार कर रहा था और कोई रंग-बिरंगे ऊन या रेशमसे सूती और ऊनी वस्त्रोंके चित्रमयजगत् किये दे रहा था। सारांश यह, कि कोई किसी वस्तुको भी ईश्वरने जैसे बनाया है वैसा नहीं रहने देना चाहता था।

काश्मीरके सौन्दर्य-कोशमें सबसे मूल्यवान् मणि वहाँके शालामार और निशातबाग माने जाते हैं और वास्तवमें सम्राज्ञी नूरजहाँ और सम्राट् जहाँगीरकी स्मृतिसे युक्त होनेके कारण वे हैं भी इसी योग्य। शालामारमें बैठकर तो अनायास ही ध्यान आ जाता है कि यह उसी सौन्दर्य-प्रतिमाका प्रमोद-वन रह चुका है जिसे सिंहासनतक पहुँचनेके

लिए उसके अधिकारीको स्वयं अपने जीवनकी सीढ़ी बनानी पड़ी और जब वह उस तक पहुँच गई तब उसकी गुरुतासे संसार काँप उठा। यदि वे उन्नत, सघन और चारों ओर वरद हाथोंकी तरह शाखायें फैलाये हुए चिनारके वृक्ष बोल सकते, यदि आकाशतक अपने सजल उच्छ्वासोंको पहुँचानेवाले फौवारे बता सकते तो जाने कौन-सी करुणा-मधुर कहानी सुननेको मिलती !

जिन रजकणोंपर कभी रूपसियोंके राग-रंजित सुकोमल चरणोंका न्यास भी धीरे धीरे होता था, उनपर जब यात्रियोंके भारी जूतोंके शब्दसे युक्त कठोर पैर पड़ते थे, तब ऐसा लगता था कि वे पीड़ासे कराह उठेंगे।

किंवदन्ती है कि पहले शालामारका निर्माण और नामकरण श्रीनगर बसानेवाले द्वितीय प्रवरसेनद्वारा हुआ था। फिर उसीके भग्नावशेषपर जहाँगीरने अपने प्रमोद-उद्यानकी नींव डाली। अब तो उसकी अनन्त प्रतीक्षामें जीर्ण वृक्षोंकी पंक्तिमें किसी परिचित पद-ध्वनिको सुननेके लिए निस्तब्ध पल्लवोंने, ऊपर क्षणिक वितान बना देनेवाले फौवारोंके सीकरोंमें और भङ्गिमामय प्रपातोंमें पारस्य देशकी कलाकी अमिट छाया है। अजस्र-प्रवाहिनी सरिताओंसे निरन्तर सिक्त हमारे देशने जलको इतने बन्धनोंमें बाँधकर नर्तकीके समान लास्य सिखानेकी आवश्यकता नहीं समझी थी, परन्तु मुसलमान शासकोंके प्रभावसे इसने हमारे सजीव चित्र-से उपवनोंको सजल भी बना दिया। जिस समय सारे फौवारे सहस्रों जल-रेखाओंमें विभाजित हो-होकर

---

१ नूरजहाँका पहला पति शेरखाँ था जिसकी हत्या कराके जहाँगीरने नूरजहाँको पत्नी बनाया

आकाशमें उड़ जानेकी विफल चेष्टामें अपने तरल हृदयको खण्ड खण्ड कर पृथ्वीपर लौट आते हैं:—सूखे प्रपातोंसे अश्रु-पात होने लगता है, उस समय पानीके बीचमें बनी हुई राजसी काले पत्थरकी चौकीपर किसी अनन्त अभावकी छाया पड़कर उसे और भी अधिक कालिमा-मय कर देती है।

डल-झीलकी दूसरी ओर सौन्दर्यमयी नूरजहाँके भाई आसफ अलीका पहाड़के हृदयसे चरण तक विस्तृत निशातबाग है, जिसकी क्रमबद्ध ऊँचाईके अनुसार निर्मित बारह चबूतरोंके बीचसे अनेक प्रकारसे खोदी हुई शिलाओंपर झरते हुए प्रपात अपना उपमान नहीं रखते। इसकी सजलतामें शालामारकी-सी प्यास छिपी नहीं जान पड़ती, वरन् एक प्रकारका निर्वेद मनुष्यको तन्मय-सा कर देता है। मनुष्यने यहाँ प्रकृतिकी कलामें अपनी कला इस प्रकार मिला दी है कि एकके अन्त और दूसरीके आरम्भके बीचमें रेखा खींचना कठिन है, अतः हमें प्रत्येक क्षण एकका अनुभव और दूसरेका स्मरण होता रहता है। इसके विपरीत अन्तःपुरकी सजीव प्रतिमाओंके लिए इन प्रतिमाओंके आराधक और आराध्य बादशाहके लिए तथा इनके कौतुकसे विस्मित सर्वसाधारणके लिए तीन भागमें विभक्त शालामारके पत्ते पत्तेमें मनुष्यकी युगोंकी प्यासी लालसाओंकी अस्पष्ट छाया मदिराकी अतृप्त मादकता लिये घूमती-सी ज्ञात होती है, परन्तु दोनों ही अपूर्व हैं, इसमें सन्देह नहीं।

इस चिर-नवीन स्वर्गने सुन्दर शरीरके मर्ममें लगे हुए व्रणके समान अपने हृदयमें कैसा नरक पाल रक्खा है, यह कभी फिर कहने योग्य करुण कहानी है।

परिचय और टिप्पणी

१-मुझसे सब अच्छे—इसके लेखक सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला करोड़पति व्यापारी हैं। व्यवसाय-क्षेत्रमें आपका बड़ा नाम है। आपपर लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंकी कृपा है। हिन्दीमें आपने बहुत कम लिखा है। परन्तु जो कुछ लिखा है बहुत सुन्दर। यह लेख उसका नमूना है। इसमें बहुत ही सहज, सरल और मर्मस्पर्शी शैलीमें मनुष्यके अहंभाव और अभिमानपर चोट की है। साहित्य और संस्कृतिका उद्देश मनुष्यको विनयी, नम्र और निरहंकार बनाना और यह बताना है कि सृष्टिमें उसका वास्तविक स्थान क्या है। इसी उद्देश्यकी पूर्ति इस लेखसे की गई है। यह लेख 'त्यागभूमि' में छपा था।

२-वैशाली—इसके लेखक बाबू पारसनाथसिंह हिन्दीके एक श्रेष्ठ लेखक हैं और इस समय 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के प्रबन्ध-विभागके प्रधान कार्यकर्त्ता हैं। आपने 'पद्म-पराग' आदि अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थोंका सम्पादन और प्रकाशन किया है। बहुत अच्छा लिखते हैं। इस लेखका उद्देश प्राचीन भारतवर्षके समृद्ध कालकी एक झलक भर दिखा देना है। इतिहास-प्रधान होते हुए भी यह लेख साहित्यिक ढंगसे लिखा गया है और खूब मनोरंजक है। यहाँ बुद्ध भगवानके समयमें और उसके बहुत दिन बाद तक भारतवर्षमें अनेक गणतंत्र राज्य थे जिन्हें आजकालकी भाषामें एक तरहके रिपब्लिक या प्रजातंत्र कह सकते हैं। लिच्छिवियोंका गणतंत्र भी उनमेंसे एक था। इन राज्योंका कोई एक राजा नहीं होता था, प्रजाद्वारा चुने प्रतिनिधि ही शासन करते थे। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्व० डा० काशीप्रसाद जायसवालके 'हिन्दू राजतंत्र' नामक ग्रन्थसे इस विषयकी विशेष जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

'श्वेताङ्ग' या 'गौराङ्ग महाप्रभु' अँगरेजोंके लिए व्यङ्गार्थमें आया है। राइटर्स (Reuters) अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है जो एक देशकी खबरें दूसरे देशके अखबारोंको दिया करती है।

३-तुम हमारे कौन हो ?—इसके लेखक 'पार्वतीनन्दन' 'सरस्वती' के पुराने लेखकोंमेंसे हैं। इनका असली नाम बाबू गिरिजाकुमार घोष है। आप बंगाली होकर भी सुन्दर हिन्दी लिखते हैं। आत्म-कथाके रूपमें यह वैज्ञानिक

लेख सुन्दर साहित्यिक ढँगसे लिखा गया है। साहित्यिक ढँगसे लिखे हुए वैज्ञानिक और ऐतिहासिक लेख क्वचित् ही देखे जाते हैं। इसमें प्रकृतिवर्णन, व्यंग, हास्य, सुन्दर उपमा आदि सभी साहित्यिक विशेषताएँ हैं। 'भाखा', 'अस्तुत', 'गरूर' आदि अपभ्रंश शब्दोंके व्यवहारसे लेखमें स्वाभाविकताका पुट दिया गया है।

४-पंच-परमेश्वर—इसके लेखक स्व० प्रेमचंदजी आधुनिक कालके हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ कहानी-उपन्यास लेखक गिने जाते हैं। उनकी मृत्यु हालहीमें हुई है। यह कहानी उनकी-उन कहानियोंमेंसे एक है जो 'सप्तसरोज' नामक कहानी-संग्रहमें है। इस कहानीमें भारतकी प्राचीन पंचायती प्रथाका, जिसका कि इस युगमें तेजीसे सर्वनाश हो रहा है, उज्ज्वल रूप दिखाया गया है।

५-आन्दोलन—इसके लेखक मावलीप्रसादजी श्रीवास्तव रायपुरके रहनेवाले हैं। सरस्वतीमें आपके अनेक निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। आन्दोलन इस युगकी बड़ी चीज है। प्रत्येक व्यक्तिको उसका ज्ञान होना चाहिए।

६-हिन्दू धर्म क्या है—सुप्रसिद्ध विद्वान् बाबू भगवानदासजीके सुपुत्र बाबू श्रीप्रकाशजी एम्० ए०, बार-एट-ला हिन्दीके एक गंभीर लेखक हैं। काशीके दैनिक पत्र 'आज' के बहुत समय तक सम्पादक रह चुके हैं और इस समय आसामके गवर्नर हैं। निबंधरचना-प्रणालीकी दृष्टिसे यह निबन्ध उत्तम है।

'नेति-नेति' का अर्थ है 'ऐसा नहीं, ऐसा नहीं'। बृहदारण्यकोपनिषद (अध्याय ३, नवम ब्राह्मण, श्लो० २६) में आत्माको 'नेति नेति' रूप (नेतिनेत्यात्मा) माना है। आत्मा क्या सिर है,—पैर है,—शरीर है ? आदि प्रश्नोंका उत्तर 'नेति' होता है। वास्तवमें आत्मा सिरमें भी है, पैरमें भी है, शरीरमें भी है तथा इसी प्रकार अनेक पदार्थों और तत्त्वोंमें है परन्तु पृथक् पृथक् ये अंग और पदार्थ आत्मा नहीं हैं। इस तरह, वह आत्मा इस 'नेति नेति' का समूहरूप है।

७-अबसे सौ बरस बाद—इसके लेखक श्री रघुपतिसहाय हिन्दीके नामी लेखकोंमेंसे हैं। वर्तमानको ठीक समझनेके लिए आवश्यक है कि हम भविष्यकी ओर भी निगाह रक्खें। जो मनुष्य दूरतक नहीं देखता, वह जीवनमें सफल नहीं हो सकता। 'अबसे सौ बरस बाद' लेख इसीलिए

यहाँ दिया जाता है कि विद्यार्थी दूरतक विचार करना सीखें। भविष्यकी समस्त घटनाओं, आन्दोलनों और उथल-पुथलोंका मूल वर्तमानमें है।

८–चिट्ठी पत्री—यह चिट्ठी-पत्री डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'समाज' नामक निबन्ध-संग्रहसे ली गई है। 'रवि' बाबू केवल बंगाल या भारतवर्षकी ही विभूति नहीं बल्कि एक विश्व-विभूति थे। हाल ही उनका स्वर्गवास हुआ है। उनकी रचनाओंमें जो व्यंग, हास्य, शृंगार मिलता है वह संसारके बहुत कम लेखकोंकी चीजोंमें मिलता है, परन्तु, वे जो लिखते हैं बहुत गंभीर लिखते हैं।

बंगालमें बाबा और पोतेमें परस्पर हास-परिहास और व्यंग करनेकी रीति है। रवि बाबूने इन चिट्ठियोंमें दोनों ओरसे बहुत ही शिष्ट हास और व्यंग किये हैं। इस तरहकी उनकी लिखी हुई अनेक चिट्ठियाँ हैं जिनमेंसे केवल चार ही कुछ संक्षिप्त करके इस संग्रहमें दी गई हैं। इनमें दादाजी पुराने विचारोंके प्रतिनिधि हैं और उनके नाती नवीनचन्द्र शर्मा नवीन विचारोंके। चिट्ठियाँ इस ढँगसे लिखी गई हैं कि हम जिस चिट्ठीको पढ़ते हैं उसीके विचार ठीक मालूम होते हैं। दोनों तरहके विचारोंमें जो अच्छाइयाँ और बुराइयाँ हैं, उनपर विचार करनेकी इनमें खूब सामग्री है।

९–सदाचार और प्राकृतिक चुनाव—इसके लेखक बाबू गोवर्धन-लालजी एम०ए०बी०एल० हिन्दीके एक गंभीर लेखक हैं। उन्होंने दार्शनिक और वैज्ञानिक विषयोंपर ही अपनी कलम चलाई है और अपने विशाल अध्ययन और मननका फल अपने 'नीति-विज्ञान' नामक ग्रंथके रूपमें दिया है। यह लेख उसी ग्रंथका एक अंश है। विकासवादपर भी उन्होंने एक बहुत सुन्दर ग्रन्थ लिखा है जो अभी पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हुआ।

यह लेख डार्विनके सिद्धान्तके आधारपर लिखा गया है और इसमें बतलाया गया है कि मनुष्य जातिके विकासमें सदाचारका बड़ा भारी हाथ है। सदाचारशील जातियाँ ही उन्नति करती हैं, फलती-फूलती हैं और इसके विरुद्ध सदाचारकी परवा न करनेवाली जातियाँ अवनत होती होती नष्ट हो जाती हैं।

अमेरिकन रेड इंडियन=अमेरिकाके आदिम निवासी जो लाल रंगके होते हैं और जिनका बड़ी तेजीसे क्षय हो रहा है।

पिण्डार और साइमोनाइडीज=(ई० पू० ५२२ से ४४२) प्राचीन ग्रीसके प्रसिद्ध कवि। पेरीक्लीज=(ई० पू० ४९० से ४२०) सुप्रसिद्ध अथीनियन राजनीति-विशारद, जनरल और वक्ता जिसने कि अथेन्सको यश और कीर्तिके सर्वोच्च शिखरपर पहुँचा दिया था। साक्रेटीज़=(ई० पू० ४६९ से ३९९) संसारप्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक और योद्धा। हिन्दीमें यह 'सुकरात' के नामसे प्रसिद्ध है। वह एक मूर्तिकारका लड़का था।

१०—स्मृतिज्ञानकीर्ति—इसके लेखक बौद्ध भिक्षु महापंडित राहुल सांकृत्यायन अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिके विद्वान् हैं और हिन्दीके प्रतिभाशाली लेखक हैं। ब्राह्मणकुलमें जन्म लेकर घरसे भागकर आप संन्यासी हो गये। आपका उस समयका नाम 'बाबा रामोदार' है। बुद्ध भगवान् और उनके धर्मपर श्रद्धा होनेपर आप बौद्ध हो गये। आप संसारके सभी देशोंकी यात्रा कर चुके हैं और बहुत-सी भाषाएँ जानते हैं। प्राचीन बौद्ध ग्रन्थोंके खोज और उद्धारके लिए आप तीन दफे तिब्बतकी अत्यन्त दुःसाध्य यात्रा कर आये हैं और वहाँसे सैकड़ों अलभ्य ग्रंथ ले आये हैं जिनके विषयमें कहा जाता था कि वे संसारसे लुप्त ही हो गये हैं। इस कहानीमें तिब्बतका जो वर्णन है वह कल्पित न होकर अनुभूत है और इस कारण इसमें जान आ गई है। साथ ही यह कहानी भारतवर्षके प्राचीन गौरवकी याद दिलानेवाली है। बौद्ध युग भारतीय इतिहासका स्वर्णयुग है जिसमें भारतकी कीर्ति-ध्वजा सारी दुनियामें फैली। यह उसी युगकी कहानी है। यह 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी।

११—कुत्ते—यह लेख उर्दूके हास्यरसके प्रसिद्ध लेखक एम० एस० बुखारी एम० ए० का लिखा हुआ और विशालभारतके सहायक-सम्पादक श्री ब्रजमोहन वर्माका अनुवाद किया हुआ है। 'विशाल भारत' से ही यह थोड़ेसे फेरफारके साथ लिया गया है। यह उर्दू-शैलीके लोच और सौंदर्यको पूरी तरह प्रकट करता है। कवियों आदिपर इसमें खूब तेज व्यङ्ग हैं।

१२—हिंसापर अहिंसाकी विजय—इसके लेखक स्व० बाबू जयशंकर प्रसाद आधुनिक समयके श्रेष्ठ हिन्दी नाटककार गिने जाते हैं। अभी कुछ ही समय पहले आपका देहान्त हुआ है। आपके 'चन्द्रगुप्त' 'अजातशत्रु,' 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य,' आदि अनेक मौलिक नाटक हैं, जो प्रायः ऐतिहासिक हैं। यह अंश उनके 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' नाटकमेंसे लिया गया

है। इसमें भारतकी प्राचीन संस्कृति, शासन-व्यवस्था, समाज-रचनाको उस समयके अनुकूल ही चित्रित किया गया है और उसी समयके शब्दभाण्डारसे पारिभाषिक शब्द चुने गये हैं।

'दंडनायक' कोतवालको कहते हैं। बौद्ध और जैन साधु 'श्रमण' कहलाते थे। विश्वात्मवाद वेदान्तका है।

'मध्यमा प्रतिपदा' या मध्यम मार्ग बौद्ध सिद्धान्तका नाम है। मतलब यह कि न तो यह अत्यन्त उग्र तपस्या और देह-दमनके मार्गका आदेश देता है और न खूब सुखोपभोग करते हुए बलि यज्ञ आदिसे देवताओंको प्रसन्न करके स्वर्ग-प्रप्तिका उपदेश देता है। यह दोनोके बीचका मार्ग है।

सप्तसिन्धुप्रदेश अर्थात् सात नदियोंका प्रदेश पंजाब।

पारस्य देश अर्थात् फारस—आधुनिक पर्शिया या ईरान।

'प्रच्छेन्न बौद्ध' अर्थात् छुपे हुए बौद्ध। शंकराचार्यको उनके विरोधी 'प्रच्छन्न बौद्ध' कहा करते थे। 'ब्रह्मवाद' की और शून्यवाद' की अत्यधिक समानता, (केवल 'शून्य' और 'ब्रह्म' के शब्दोंके हेरफेर) के कारण ही वे ऐसा कहते थे।

'बिहार' बौद्ध मठको कहते हैं। प्राचीन कालमें अत्यधिक बौद्ध मठ होनेके काण ही आधुनिक बिहार प्रान्तका नाम बिहार हुआ।

१३—स्वर्गका एक कोना— वर्तमान स्त्री-कवियोंमें इसकी लेखिका श्रीमती महादेवी वर्मा एम० ए० सर्वश्रेष्ठ मानी जाती हैं। आपकी कविताएँ अत्यन्त भावपूर्ण और गूढ़ होती हैं। गद्य भी आप बड़ा सुन्दर लिखती हैं। यह आपके काव्यमय गद्यका नमूना है। 'स्वर्गका एक कोना' में 'स्वर्ग' से मतलब काश्मीरसे है। काश्मीरको भू-लोकका स्वर्ग कहा भी जाता है। यह लेख भी 'सरस्वती' से लिया गया है।

इस लेखमें खास बात लक्ष्य करनेकी है इसकी उपमाएँ। महादेवी अपनी उपमाओंके लिए प्रसिद्ध हैं। इतनी सुन्दर उपमाएँ क्वचित् ही मिलती हैं।